TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY

UNIVERSAL LIBRARY
OU_176613
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 A82P   Accession No. H2604

Author अश्क, उपेन्द्रनाथ ।

Title पर्दा-उठाओ पर्दा-गिराओ । 1951

This book should be returned on or before the date last marked below.

पत्थर-अलपत्थर

Blessed be ye poor : for yours is the Kingdom of God (?)

—New Testament

पत्थर-अलपत्थर

उपेन्द्र नाथ अश्क

नीलाभ प्रकाशन
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण १९५७

मूल्य
४ रुपये पच्चीस नये पैसे

प्रकाशक
नीलाभ प्रकाशन - ५ खुसरोबाग रोड, इलाहाबाद
मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय - सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

दीनानाथ नादिम, सोमनाथ जुत्शी
ओंकार काचरू, निर्मल काचरू
तथा कश्मीर के अन्य मित्रों के नाम

पत्थर-अलपत्थर कश्मीर सम्बन्धी अश्क का पहला लघु-उपन्यास है। हसनदीन कश्मीर का ग़रीब किसान है, पर उसकी कहानी भारत भर के ग़रीबों की कहानी है। वह अपने सुख और दुख की ज़िम्मेदारी ख़ुदा पर डालकर निश्चिन्त हो जाता है, पर कश्मीर के स्वर्ग का सृजन करने वाला वह ख़ुदा उस ज़िम्मेदारी को कैसे निभाता है? यही व्यंग्य बड़े सूक्ष्म ढंग से लेखक ने अपने इस लघु-उपन्यास में समो दिया है।

अश्क कश्मीर के प्राकृतिक सौन्दर्य को परिपार्श्व में रखकर और भी दो लघु-उपन्यास लिख रहे हैं, जो न केवल कला, बल्कि वस्तु के लिहाज़ से भी एक दूसरे से भिन्न हैं। उनका दूसरा लघु-उपन्यास हम शीघ्र ही पाठकों के सम्मुख रख सकेंगे, ऐसी हमें आशा है।

लेखक की ओर से

अभी कुछ ही दिन पहले ११–९–५७ को सहारनपुर से श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर का एक पत्र मिला, जिसमें उन्होंने लिखा :

"बड़ी-बड़ी आँखें पढ़ गया हूँ—क्या सरदार जी हैं आप, क्या वाणी, क्या देवा जी, तीरथराम और नबी !

"बहुत-बहुत पसन्द आया। पढ़ने के बाद उपन्यास के पात्र साथियों की तरह मन में बस जायें, उपन्यास की यह औपन्यासिकता हिन्दी में ख़त्म होती जा रही है। यह उपन्यास अपवाद है। कमाल यह है कि १०० प्रतिशत यह संस्मरण है, १०० प्रतिशत ही उपन्यास।"

'पत्थर-अलपत्थर' को पढ़ते हुए मेरे एक मित्र ने जो स्वयं बड़े अच्छे कहानी-लेखक हैं और जिनकी मैं बड़ी क़द्र करता हूँ, कहा कि यह तो 'ट्रैवेलॉग'-सा है।

हो सकता है जिस प्रकार 'बड़ी-बड़ी आँखें' में संस्मरण के कुछ गुण आ गये, उसी प्रकार पत्थर-अलपत्थर में यात्रा-वर्णन के कुछ गुण आ गये

हों। मैंने तो अपने जाने जैसे 'बड़ी-बड़ी आँखें' संस्मरण नहीं, उपन्यास लिखा, वैसे ही 'पत्थर-अलपत्थर' भी यात्रा-वर्णन नहीं, उपन्यास ही लिखा है। अपने पाठकों से मेरा केवल इतना निवेदन है कि उपन्यास, संस्मरण अथवा यात्रा-वर्णन—ये सब सत्साहित्य ही के अन्तर्गत आते हैं। प्रस्तुत उपन्यास को वे एक साहित्यिक कृति के नाते ही पढ़ें और जिस उद्देश्य से यह लिखा गया है, यदि वे उसके मर्म को पा लें तो यह उपन्यास हो तो, ट्रैवेलॉग हो तो, कोई अंतर नहीं पड़ता।

मेरे एक दूसरे घनिष्ट मित्र ने इसे पढ़कर कहा, 'यार, तुमने यह क्या लिखा है, इसमें लिखने को क्या था?' वे कहना यह चाहते थे कि यह सब तो रोज़ होता रहता है, इसमें लिखने की क्या बात है? मैंने उनसे कहा कि इस लिहाज से तो मेरे सारे साहित्य में कुछ नहीं है, क्योंकि मैं प्रायः उन्हीं बातों को लेता हूँ, जो साधारण हैं, रोज़मर्रा होती हैं।

मैं ऐसा क्यों करता हूँ? इसका मैं सिवाय इसके कोई उत्तर नहीं दे सकता कि मुझे वे बातें ही ज्यादा कोंचती हैं। उन्हें लिखे बिना चैन नहीं आता। मैं दो साल लगातार कश्मीर गया हूँ। तीन-तीन महीने तक वहाँ ख़ूब घूमा हूँ, जिन बातों का सबसे ज्यादा असर मेरे दिमाग़ पर पड़ा, उनका ही सार 'पत्थर-अलपत्थर' में है। जैसे मैं यहाँ डलहौज़ी में तीन महीने से अपने वृहद उपन्यास 'गिरती दीवारें' का दूसरा भाग शुरू करने के ख़याल से पड़ा हूँ, उसी प्रकार मैं इसी उद्देश्य से कश्मीर भी गया था। वहाँ कुछ बातों का ऐसा प्रभाव मेरे मन पर पड़ा कि अपना यह उपन्यास छोड़कर मैं 'पत्थर-अलपत्थर' लिखने लगा। कश्मीर के स्वर्ग का आनन्द लूटने को जाने वालों में से एक वर्ग की मनोवृत्ति से मुझे ऐसी तकलीफ़ हुई कि मेरी कहानी 'दालिये' का एक पात्र 'पत्थर-अलपत्थर' में कुछ और खुलकर आ गया है।

जब तक मैंने उस मनोवृत्ति का खाका सभी पहलुओं से नहीं खींच लिया, मुझे चैन नहीं पड़ा।

हो सकता है, मेरे कुछ पाठक भी मेरे उन घनिष्ट मित्र ही की रुचि के हों। उनसे मैं क्षमा चाहूंगा। मनोरंजन साहित्य का निहायत जरूरी अंग सही, पर केवल उसे ही साहित्य का एकमात्र उद्देश्य मैं नहीं मानता। 'पत्थर-अलपत्थर' कश्मीर के स्वर्ग का सौन्दर्य भी दिखाता है, पर कश्मीर का वासी उस सौन्दर्य का उपभोग करने के लिए आने वालों से कैसी आशा रखता है, इसकी ओर भी संकेत करता है और यदि मेरे कुछ भी पाठक कश्मीर (अथवा दूसरे पहाड़ों को) जाते समय अपने व्यवहार का जायजा ले लेंगे तो मैं अपना प्रयास सफल समझूँगा। केवल इतना मैं और कहना चाहता हूँ कि मैंने अत्युक्ति से काम नहीं लिया। उस स्वर्ग का सुख लेने को जाने वाले अधिकांश लोग जैसा बर्ताव करते हैं, उसी की एक झलक मैंने पाठकों को दी है।

चूँकि जिन मित्रों ने उपन्यास के मसौदे को पढ़ा, उन्होंने भिन्न-भिन्न मत दिये, इसलिए कौशल्या (प्रकाशक के नाते अधिक, पत्नी के नाते कम) चाहती थी कि मैं इस पर एक विस्तृत भूमिका भी लिखूँ। यद्यपि मेरे उपन्यासों और नाटकों में प्रायः भूमिकाएँ रहती हैं, पर किसी उपन्यास पर भूमिका का होना मैं कुछ बहुत अच्छा नहीं समझता—साहित्यिक कृतियों पर कब भिन्न-भिन्न मत नहीं हुए? दूसरे इस छोटे-से उपन्यास पर लगातार साल-भर से जुटे रहने और (यद्यपि इसका एक मसौदा एक-डेढ़ वर्ष पहले 'धर्मयुग' में छपकर लोकप्रिय भी हो चुका था) केवल अपने सन्तोष के लिए इसे तीन बार लिखने से (जिस प्रक्रिया में न केवल यह पहले मसौदे से तिगुना हो गया, बल्कि बदल भी गया) मैं इतना थक गया था कि मुझे अब इसके गुण-दोषों का विवेचन करना बड़ा ही कष्टकर लगा। विशेषकर उस सूरत

में, जब मैं न केवल 'गिरती दीवारें' का दूसरा भाग फिर शुरू करने की सोच रहा था, बल्कि शुरू भी कर चुका था।

कौशल्या को मैंने अपने मन की स्थिति बतायी तो उसने मुझ पर ज़ोर देना बन्द कर दिया, लेकिन पूछा कि यदि वह गुप्त जी (श्री भैरवप्रसाद गुप्त, सम्पादक, 'कहानी') से इसकी भूमिका लिखवा ले तो क्या मुझे आपत्ति होगी? मैंने कहा कि ज़रा भी नहीं, क्योंकि गुप्त उन मित्रों में से हैं, जिन्हें उपन्यास सर्वाधिक पसन्द आया है।

अभी कौशल्या का ख़त मिला है कि उसने गुप्त जी को मना लिया है, (यद्यपि वे विशेषांक में व्यस्त हैं)। मैंने सुख की साँस ली है, क्योंकि दिल-ही-दिल में मैं डर रहा था कि मुझे यह भूमिका लिखनी ही न पड़ जाय। गुप्त का मैं बेहद आभारी हूँ कि उन्होंने अपनी व्यस्तता के बावजूद मेरी यह बला अपने सिर ले ली। इस बात का मुझे पूरा विश्वास है कि इस उपन्यास के बारे में वे मुझसे बेहतर पाठकों का मार्ग दर्शन कर सकेंगे, क्योंकि पहले तो यह कि वे स्वयं बहुत अच्छे उपन्यासकार हैं, दूसरे वे सम्पादक हैं और कृतियों के गुण-दोषों का विवेचन नित्य करते हैं, और तीसरे, जैसा कि मैंने पहले कहा, उन्हें यह उपन्यास मेरे सारे साहित्य में सर्वाधिक पसन्द है।

स्नो व्यू, डलहौज़ी
१७-९-५७

उपेन्द्रनाथ अश्क

अश्क के उपन्यास और पत्थर-अलपत्थर

भैरवप्रसाद गुप्त

मेरा वतन एक जामा है
जिस पर तरह-तरह के सुन्दर बेल-बूटे कढ़े हैं
जो हमारे तन को ढँकता है

'पत्थर-अलपत्थर'—अश्क का नया उपन्यास कश्मीर पर लिखा गया है और कश्मीर के बारे में कुछ भी पढ़ते समय अनायास मुझे इन पंक्तियों की याद आ जाती है, जो मैंने कश्मीर के विख्यात कवि दीनानाथ नादिम की कविता 'हमारा देश' में सुनी थीं। यह कविता पिछले जनतन्त्र दिवस पर उन्होंने रेडियो पर पढ़ी थी। तभी से ये सारगर्भित पंक्तियाँ और इनका भाव मेरे दिमाग़ में अटक गया है। मैं जब भी कश्मीर-सम्बन्धी कोई रचना पढ़ता हूँ तो जहाँ यह देखता हूँ कि रचयिता ने उस जामे की सुन्दरता का कैसा वर्णन किया है, वहाँ यह भी देखता हूँ कि जामे की सुन्दरता का वर्णन करते हुए, वह उसके नीचे ढँके तन को देख पाया है कि नहीं।

....मैंने कितने ही विज्ञापन पढ़े हैं, जिनमें कश्मीर की प्राकृतिक

सुषमा और स्वास्थ्यकर जल-वायु का आकर्षक वर्णन रहता है और पहाड़ों, लड़कियों और बजरों के चित्र होते हैं और लिखा रहता है— कश्मीर देखिए। मैदानों की गर्मी और धूल-गर्द से बचना चाहते हों तो कश्मीर आइए....और मुझे हमेशा लगा है कि कोई भिखारिन लड़की सोने का कटोरा हाथ में लिये भीख माँग रही है।

....मैंने कश्मीर पर कितनी ही रूमानी कहानियाँ पढ़ी हैं, जिनमें 'मेहमानों' को लड़कियाँ भेंट की जाती हैं और बाप या भाई बख़शीश माँगते हैं। उन कहानियों में सुन्दर दृश्यों के वर्णन मिलते हैं, भोली-भाली लड़कियाँ मिलती हैं, बेशर्म माँ-बाप मिलते हैं। लेखकों का कहना है कि वहाँ इतनी ग़रीबी है कि लोग इज़्ज़त बेचते हैं। इज़्ज़तफ़रोशी के चित्रण के माध्यम से वे लेखक यह दिखाना चाहते हैं कि कश्मीर बहुत ग़रीब है।

....और सम्राट जहाँगीर की वह अमर पंक्ति—अगर फ़िरदौस बर रूए ज़मीं अस्त, हमीं अस्तो, हमीं अस्तो, हमीं अस्त!—याने अगर धरती पर स्वर्ग कहीं है, तो यहीं है, यहीं है, यहीं है।

....और फिर जैसे सब कुछ गडमड हो जाता है और उसमें कश्मीर डूब जाता है।

आख़िर कश्मीर है क्या? वह भू-खण्ड जो स्वर्ग-सा सुन्दर है और जहाँ के लोग चन्द सिक्कों के एवज़ अपनी इज़्ज़त बेचते हैं?

और फिर सुना कि कश्मीर के लोग वैसी कहानियाँ लिखने वालों को गाली देते हैं और बाहर से कश्मीर आने वाले लेखकों से सरोष कहते हैं कि जाइए, हमारे गाँवों में जाकर देखिए कि क्या आपको ऐसे ही लड़कियाँ मिल जाती हैं? कश्मीर के लोगों का कहना है कि उन कहानियों में कश्मीर नहीं है। उन कहानियों में लेखकों की अपनी ही विकृतियाँ हैं। ऐसे लेखकों को मालूम ही नहीं कि कश्मीर क्या है? वहाँ के लोग और उनकी ज़िन्दगी

क्या है ? ये कहानियाँ कश्मीर के नाम पर धब्बा हैं। वह कहानी क्या, जिसमें जीवन का सत न हो। सैलानी लेखकों के बस की यह बात नहीं कि वे कश्मीर के जीवन का सत ग्रहण कर उसे कहानियों में चित्रित कर सकें। कही के भी लोगों को देखना, उन्हें समझना, उनकी ज़िन्दगी की जाँच करना वहाँ के जीवन के सत को, सार को ग्रहण करना कोई साधारण काम नहीं। प्राकृतिक दृश्यों की तरह लोग जड़ नहीं हुआ करते कि आँख उठाकर देख लो और समझ लो कि देख लिया। लोगों को देखना हो तो उन्हें उनके जीवन-संघर्ष मे देखो।

और पहली बार वहाँ के लोगों के दर्शन मुझे दीनानाथ नादिम ही की पहली कहानी (कश्मीरी भाषा की पहली कहानी) 'शीना प्यतो-प्यतो' (आ जा बर्फ़ आ जा) मे हुए। नूरी, क़ादिर चाचा, मुस्तफा, रमज़ान आदि ने पहली बार बताया कि कश्मीर वास्तव में क्या है; वहाँ के लोग कैसे हैं; उनका जीवन-संघर्ष और दुख-सुख क्या है; प्रेम और भाईचारा कैसा है और अपने बाल-बच्चों के लिए उनके हृदय में कितना गहरा प्रेम और तड़प है। नूरी की वे पंक्तियाँ—

म्य न आस काफ़िला दूरे
रावरोवुम शूरे पान...[1]

और गिरती हुई बर्फ़ में मुस्तफ़ा का घर के लिए चल देना और एक उतराई में लुढ़ककर रुपयों और सामान की पोटली गँवा देना और खाली हाथ घर पहुँचकर भी बच्चों के मुंह से यह सुनकर वापस लौट जाना—

---

[1] **मुझे खबर न थी कि काफ़िला दूर चला जायगा नहीं तो मैं अपना मासूम दिल ही मुहब्बत पर न्योछावर कर देती।**

शीना प्यतो प्यतो
बब्ब यि तो यि तो
बतु दियतो दियतो
चोचि दियतो दियतो[1]

नादिम की इस कहानी के बाद कश्मीर ही के युवक लेखक उमेश कौल की कहानी 'याकूत' (कश्मीरी भाषा की तीसरी कहानी) में हमने वहाँ के जागे हुए युवकों को देखा। कश्मीरी भाषा की इन कहानियों में हमने देखा कि उस सुन्दर बेल-बूटों वाले जामे को पहनने वाले कैसे हैं, उनकी मुहब्बत कैसी है, उनका दर्द कैसा है? बाहर के लेखकों ने जब कश्मीर को ग़लत ढंग से चित्रित किया तो प्रतिक्रिया के तौर पर कश्मीर के लेखकों ने स्वयं कलम उठायी और कश्मीर का सच्चा चित्रण करने वाली कहानियाँ लिखीं। कश्मीर अब जाग रहा है। वह अपनी कविताओं और कहानियों से संसार को बतायेगा कि कश्मीर क्या है, उसकी पुकार क्या है?

कश्मीर के बाहर के लेखकों में अश्क पहले कथाकार हैं, जिन्होंने कश्मीर को निकट से देखने और समझने का प्रयत्न किया है और उसे यथार्थ रूप में, यथार्थ की दृष्टि से चित्रित किया है।

'पत्थर-अलपत्थर' से पहले अश्क ने कश्मीर पर कई कहानियाँ लिखीं— 'कहानी लेखिका और जेहलम के सात पुल', 'मेमने' और 'दालिये' ऐसी ही यथार्थवादी कहानियाँ हैं।......कश्मीर का अनुपम प्राकृतिक सौन्दर्य,

[1] बर्फ़ आ जा आ जा
अब्बा आ जा आ जा
भात दे दो, दे दो
रोटी दे दो, दे दो।

वहाँ के लोगों की घोर ग़रीबी और जीवन-संघर्ष और अपने अधिकारों के प्रति सचेत होने वाले युवकों के साथ भ्रमणार्थियों के जो ख़ाके अश्क ने इन कहानियों में खींचे हैं, 'उनसे केवल कश्मीर ही का सजीव चित्र हमारे सामने नहीं आता, बल्कि वह दृष्टि भी समझ में आती है, जिससे भ्रमणार्थी कश्मीर को देखते हैं—और जिस दृष्टि से पहले लेखक कश्मीर-सम्बन्धी कहानियाँ लिखते रहे हैं।

'कहानी लेखिका और जेहलम के सात पुल' के बाद (जिस संग्रह में कि अश्क की ये कश्मीर-सम्बन्धी कहानियाँ संकलित हैं) अश्क ने कश्मीर ही की पृष्ठभूमि पर अपना यह पाँचवाँ उपन्यास 'पत्थर-अलपत्थर' लिखा है।

कई दृष्टियों से यह लघु-उपन्यास अश्क के सभी पिछले उपन्यासों से भिन्न है।

अश्क के दोनों प्रसिद्ध उपन्यास 'गिरती दीवारें' और 'गर्मराख' पढ़ते समय मुझे लगा कि मैं एक ही वृहद उपन्यास का एक-के-बाद-दूसरा अध्याय पढ़ रहा हूँ—'गिरती-दीवारें' और 'गर्मराख' जैसे एक ही वृहद उपन्यास के दो बड़े-बड़े अध्याय हों।

उनके पहले उपन्यास 'सितारों के खेल' और चौथे उपन्यास 'बड़ी-बड़ी आँखें' को मैंने जान-बूझकर इन दोनों वृहद उपन्यासों के साथ नहीं रखा। जहाँ तक 'सितारों के खेल' का सम्बन्ध है, उस उपन्यास की लोकप्रियता के बावजूद, मेरा ख़याल है कि वह उपन्यास लिखते समय अश्क को अपना क्षेत्र (Terrace) नहीं मिला था। यों समझ लीजिए कि जड़ में जो असली बीज था, उसके अंकुरित होने से पहले ही कहीं से वहाँ कोई दूसरा मौसमी बीज आ पड़ा और वह अंकुरित, पल्लवित होकर फल-फूल दे गया और मौसम ख़त्म होते ही सूख गया।

रहा 'बड़ी-बड़ी आँखें,' तो जहाँ तक आधार-शिला का सम्बन्ध है, वह इस दृष्टि से 'गिरती दीवारें' और 'गर्म राख' से भिन्न नहीं। वही निम्न-मध्यवर्ग का चरित्र-चित्रण, जो अश्क ने अपने वृहद् उपन्यासों में किया है, 'बड़ी-बड़ी आँखें' में भी मिलता है। अंतर केवल शैली और कला में है। श्री सुमित्रानन्दन पंत ने उसे गीति-उपन्यास कहा है। गीति-तत्व उसमें न हों, यह बात नही। पंजाब के देहात की सुन्दरता अश्क के कवि ने अपने इस उपन्यास में अवश्य चित्रित की है, पर जिस बात की ओर पंत जी का ध्यान कदाचित नहीं गया, वह यह है कि 'बड़ी-बड़ी आँखें' में एक सुधारवादी संस्था का जायज़ा लिया गया है और यह बताया गया है कि ऐसी संस्था के ऊपर एक द्रष्टा, एक आदर्शवादी, एक मानवता-प्रेमी नेता के रहते भी उस इमारत की नीवें भ्रष्टाचार और स्वजन-पालन से गली जा रही है। अश्क ने बड़े सूक्ष्म, लेकिन सुस्पष्ट ढंग से यह बताया है कि किसी व्यक्तिवादी, आदर्श और सुधारवादी संस्था के उद्देश्य चाहे जितने महान हों, उसकी नींव खोखली ही होती है। जिन उद्देश्यों को लेकर देवा जी ने 'देव नगर' की स्थापना की है, उन्हीं का गला देव नगर में घोंटा जा रहा है। और यों प्रकट में रोमानी लगने वाला यह उपन्यास अपनी तमाम गीतिमयता के साथ अश्क के दोनों वृहद् उपन्यासों की तरह ठोस धरती पर खड़ा है। शैली उसकी संस्मरणात्मक और गीतिमय है, जिससे उसमें सच्चे और खरेपन के साथ अजब-सा माधुर्य आ गया है।

जहाँ तक 'गिरती दीवारें' का सम्बन्ध है, मेरा निश्चित मत है कि अश्क को पहली बार अपना क्षेत्र अपने इस दूसरे उपन्यास में मिला और तब से अब तक इस क्षेत्र ही में अपने-आपको सीमित रख, उन्होंने जो-कुछ लिखा है—कहानी या नाटक या उपन्यास—सब एक ही जटिल व्यक्ति का चित्रण अथवा उसकी आलोचना है और वह व्यक्ति है आधुनिक युग का निम्न-मध्य-वर्ग। अश्क के उपन्यासों में यह व्यक्ति अभी अपनी युवावस्था पार नहीं

कर पाया है (यहाँ मैं अश्क की कृतियों के अन्य साहित्य-रूपों का ज़िक्र जान-बूझकर छोड़ रहा हूँ, क्योंकि मैं समझता हूँ कि साहित्य में उपन्यास ही एक ऐसा रूप है, जिसमें व्यक्ति अपना पूरा जीवन पूर्ण रूप से जी सकता है, अन्य साहित्य-रूपों में नहीं)। उसे अभी बहुत सारा जीवन जीना है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह व्यक्ति अपनी पूरी आयु जियेगा और एक दिन उसकी मुकम्मल तस्वीर हमारे सामने आयेगी और वह वृहद् उपन्यास जिसका जिक्र मैंने ऊपर किया है, (जिसे ९ भागों में लिखने का स्वप्न लेखक का है) पूरा होगा और हम देखेंगे कि निम्न-मध्य-वर्ग क्या है, उसका चरित्र क्या है, उसका जीवन और उसका जीना क्या है, उसकी आशा और आकांक्षा क्या है, उसका संघर्ष और समस्या क्या है; उसका सुख और दुख, सपना और सीमा क्या है; उसका दिल और दिमाग़ क्या है; उसका बाहर और भीतर क्या है, उसका आत्म-विरोध और अन्तर्द्वन्द्व क्या है और उसकी शक्ति और दुर्बलता क्या है......?

मेरे देखने में हिन्दी-जगत में अन्य कोई ऐसा साहित्यकार नही, जिसने अश्क की अपेक्षा अधिक एकाग्रता और अधिक परिमाण में निम्न-मध्यवर्ग को लेकर साहित्य का निर्माण किया हो। हिन्दी में आज अश्क इस वर्ग के सबसे बड़े साहित्यकार है।

निम्न-मध्यवर्ग प्रेमचन्द का भी अपना विशेष क्षेत्र रहा है, किन्तु उनमें इस वर्ग को भाववादी दृष्टिकोण ही से देखने का विशेष आग्रह परिलक्षित होता है। उनका ध्यान सदा इस वर्ग के पात्रों की सज्जनता पर ही लगा रहा। मोटे तौर पर कहें तो एक वाक्य में हम कह सकते हैं कि प्रेमचन्द मानव की (चाहे वह किसी भी वर्ग का क्यों न हो) सज्जनता के कथाकार हैं। यह तो उनकी कला का पारस है, जिसके स्पर्श से उनके आदर्श पात्र भी इतने विश्वसनीय और यथार्थ

की हद छूते-से लगते हैं और हम पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ जाते हैं।[1]

प्रेमचन्द के वैसे कलाकार होने का कारण शायद यह हो कि उनके ज़माने में हमारे यहाँ, चेतना के अभाव में, वर्ग-चरित्र स्पष्ट नहीं हुए थे (सुधारवाद और गाँधीवाद का तो वह युग ही था)। लेकिन जब स्पष्ट होना शुरू हुए तो वे युगचेता प्रेमचन्द की दृष्टि से छिपे न रहे, उनकी कहानी 'कफ़न' के घीसू और माधव और 'गोदान' का गोबर उसी के परिणाम हैं, अपवाद नहीं। होरी के शव पर हम श्रद्धा और सहानुभूति के फूल चढ़ा सकते हैं। सामन्ती जुए के नीचे पिसते, जीने के लिए परिस्थितियों से अनवरत संघर्ष करते-करते मर जाने वाले होरी में हमने पहली बार उस युग के किसान की मुकम्मल तस्वीर देखी। वह इसीलिए एक महान और अमर नायक नहीं है कि उसने जीवन-संघर्ष से कभी मुँह नहीं मोड़ा, बल्कि इसलिए भी कि उसने पहली बार पूर्णरूप से यह सिद्ध कर दिया कि सामन्ती व्यवस्था किसान के लिए कितना भयंकर अभिशाप है। किन्तु प्रेमचन्द यह जानते थे कि भविष्य होरी या उस जैसे किसानों का नहीं, गोबर और उस जैसे युवकों का है, जिनके अन्दर वर्ग-चेतना की किरणें फूट रही है। यही कारण है कि प्रेमचन्द स्वयं अपने हाथों होरी का गोदान करा गये। होरी सामन्ती व्यवस्था के नीचे पिसने वाले किसानों का आईना है तो गोबर किसानों में उभरती वर्ग-चेतना की मशाल। होरी का पुनर्जन्म नहीं हो सकता। वह फिर अपना वह पुराना जीवन नहीं जी सकता। आज का युग होरी जैसे नायक का नहीं। सामन्ती तथा पूँजीवादी व्यवस्था के ह्रास के साथ ही

---

[1] **गोदान लिखने से पहले मेरे एक लेखक मित्र को प्रेमचन्द ने अपने एक पत्र में लिखा था** — I am an idealist with a touch of realism.

नायकत्व का ह्रास हो रहा है। आज के उपन्यासों में यदि कोई आलोचक होरी को ढूँढ़ता है तो यही कहना होगा कि वह अतीत में जी रहा है। आज यदि कहीं होरी है तो वह अपने घर के दरवाज़े पर बैठा या तो हुक्का गुड़गुड़ाता हुआ अपने किसी गोबर को अपनी मुक्ति की लड़ाई लड़ते हुए बेबूझ की तरह अचरज से देख रहा है या बड़बड़ा रहा है कि भाई, अब तो गोबर को जीना है; उसी का ज़माना है; हमारा तो चलने का बखत आया, ये जैसा चाहें करें। आलोचक यदि 'आज' को समझता है तो आज के उपन्यासों में उसे गोबर को, उसके विकसित रूप को ढूँढ़ने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रेमचन्द की परम्परा का विकास उसे इसी खोज में दिखायी दे सकता है। यहाँ फिर यदि गोबर को वह नायक के रूप में ढूँढ़ने का प्रयत्न करेगा तो धोखा खायेगा। यदि उसे नायक का इतना ही मोह है (संस्कार सरलता से मनुष्य का पिंड नहीं छोड़ते) तो उसे कई उपन्यासों के कई गोबरों को मिलाकर एक मूर्ति गढ़नी होगी।

अश्क-साहित्य में निम्न-मध्यवर्ग का जीवन जितनी विविधता, विस्तार, गहराई और सम्पन्नता के साथ चित्रित हुआ है, अन्य किसी लेखक के साहित्य में पाना दुर्लभ है। इस वर्ग के जीवन का जो चित्रण हमें अश्क के साहित्य में मिलता है, उससे लगता है जैसे इस वर्ग के जीवन के सम्बन्ध में अश्क की अनुभूतियाँ ऐसे सागर की तरह हमारे समक्ष लहरा उठती है, जिसे पार करना कठिन हो, जिसके तल तक पहुँचना मुश्किल हो। यह वर्ग एक ऐसा विचित्र वर्ग है, जिसका कोई वर्ग-चरित्र नहीं, बल्कि लगता है कि ऐसा होना ही उसका वर्ग-चरित्र है। यह ऐसा जटिल वर्ग है, जिसके हर सदस्य की गाँठें अलग-अलग दिखती है। यह ऐसा ढुलमुल वर्ग है, जैसे पारा, जिसे स्थिर करके परखना भी कठिन हो। यह एक ऐसा बेतुका वर्ग है, जिसका कोई एक नैतिक स्तर नहीं, एक व्यवसाय नहीं, एक जीवन नहीं,

एक आचरण नहीं। यह संक्रांति की पैदावार है। यह आकाश का स्वप्न देखता है और धरती से नफ़रत करता है और दोनों के बीच त्रिशंकु की तरह लटका रहता है। ऐसा है यह वर्ग! इसे समझ लेना आसान नहीं, पकड़ लेना सरल नहीं, चित्रित करना सहज नही। इस बीहड़ जंगल में पाँव रखना साधारण साहस का काम नही।

इस पृष्ठ भूमि में देखें तो अश्क-साहित्य का महत्व हम सही-सही आंक सकते हैं और उसका मूल्यांकन ठीक-ठीक कर सकते हैं। अश्क का आलोचक इस वर्ग के सामने आईना रखता है, अश्क का व्यंग्यकार उसकी विकृतियों की खिल्ली उड़ाता है, अश्क का कलाकार उसके प्रकाश और छाया को उभारता है।

इस सारे तथ्य को आप सामने रखें, तभी आप समझ सकते हैं कि अश्क के उपन्यासों में पात्र इतने अधिक और साधारण-से क्यों है; उनमें इतनी कथाएँ और उपकथाएँ क्यों आती हैं; छोटी-मोटी महत्वहीन-सी लगने वाली घटनाओं को क्यों तूल दिया जाता है; मुहल्लों और सड़कों और गलियों और कमरों का वर्णन क्यों विस्तार से किया जाता है। तभी आप जानेंगे कि अश्क के उपन्यासों में सामन्ती युग के नायकों ऐसे कोई नायक क्यों नहीं है; कोई ढला-ढलाया, सुगढ़, आदर्श-पात्र क्यों नही है; कोई एक सूत्र में बँधा, प्रवाहमान, उत्सुकता वर्धक कथानक क्यों नहीं है; चरित्रों का विकास क्यों नहीं है; कोई चरम-विन्दु क्यों नहीं......

आज उपन्यास केवल कथानकात्मक अथवा चरित्रात्मक गद्य नहीं रहा, आज वह जीवन का गद्य है। उसकी कला एक व्यक्ति या वर्ग या वातावरण की सांगोपांग व्यंजना है, उसके जीवन का रहस्योद्घाटन है। आज का उपन्यास जीवन के सत और सच्चाई को जिस रूप में चित्रित करने में समर्थ है, साहित्य का कोई भी अन्य रूप नहीं। और अश्क के उपन्यास निम्न-मध्यवर्ग के जीवन की व्यंजना हैं, उसके जीवन-सत का चित्र हैं।

अश्क इस वर्ग की चीख़ हैं और यही उनमें सबसे बड़ी महत्व की वस्तु है। वे इस वर्ग को नंगा करके रख देते हैं, उसकी एक-एक तह को कुरेद-कुरेदकर सामने ला देते हैं। उनके व्यंग्य सीधे, तीखे और तिलमिला देने वाले हैं। एक कुशल सर्जन की तरह अश्क इस वर्ग के हर पके फोड़े में नश्तर लगाना जानते हैं। अश्क इस वर्ग की विविध समस्याओं को उठा देते हैं, उनके हल वे पेश नहीं करते। लेकिन वे उन कुरीतियों का, बुराइयों का, समाज के फोड़ों का चित्रण इस तरह करते हैं कि पाठक के मन में उन बुराइयों को दूर करने की, उन फोड़ों का इलाज करने की प्रबल आकांक्षा जग उठती है—'यह सब बदलना चाहिए! यह सब बदलना चाहिए!' पाठक का मन पुकार-पुकारकर यह कह उठता है।

लेकिन 'पत्थर-अलपत्थर'—अश्क का यह नया उपन्यास—उनके सभी पहले उपन्यासों से भिन्न है। अश्क ने अपने इस लघु-उपन्यास में पहली बार निम्न-मध्यवर्ग के नहीं, निम्नवर्ग के एक पात्र को लिया है। 'पत्थर-अलपत्थर' कश्मीर के एक घोड़वान हसनदीन की दर्द-भरी कहानी है। टंगमर्ग से लेकर अलपत्थर की जमी हुई झील तक के पथ की पृष्ठभूमि में अश्क ने घोड़वान हसनदीन को चित्रित किया है। 'पत्थर-अलपत्थर' देश-विभाजन के बाद कश्मीर पर पाकिस्तानियों के आक्रमण के कारण आयी तबाहियों के मारे और अपने रोज़गार की आज की मंदी के शिकार घोड़वान हसनदीन का दर्द-भरा चित्र उपस्थित करता है।

अश्क ने टंगमर्ग से अलपत्थर तक के पथ में यह कहानी इतनी कुशलता से बुनी है कि हसनदीन की ज़िन्दगी की सारी ट्रेजिडी साकार होकर हमारे सामने आ खड़ी होती है।

सच पूछा जाय तो हसनदीन के चित्रण के लिए (और हसनदीन कश्मीर के घोड़वानों का प्रतिनिधि पात्र है) इस पृष्ठभूमि से बढ़कर

दूसरा कोई वातावरण हो ही नहीं सकता। हसनदीन को घर में या खेत में सही माने में नहीं देखा जा सकता। उसका कार्य-क्षेत्र तो यह पथ है, जिस पर घोड़ा चलाते-चलाते, उसके पीछे चलते-चलते, सवारों को ख़ुश करते-करते उसकी आज तक की ज़िन्दगी बीती है। इस पथ के चप्पे-चप्पे को वह जानता है, उसकी चढ़ाई-उतराई से वह पूर्ण रूप से परिचित है। इस पथ के भ्रमणार्थियों का वह जानकार है, उनकी रग-रग से वह वाकिफ़ है। इस पथ के सभी कार्यों में उसे दक्षता प्राप्त है। इस पथ ही की कमाई उसने आज तक खायी है। यही उसका कार्य-क्षेत्र है, संघर्ष-क्षेत्र है। हसनदीन को ऐक्शन में यही देखा जा सकता है। अश्क ने यह ठीक ही किया जो हसनदीन की इस कहानी को यह पृष्ठभूमि दी है। इस तथ्य को भूलकर जो लोग यह लघु-उपन्यास पढ़ेंगे, उन्हें यह किसी यात्रा-वर्णन (ट्रॅवेलॉग) की तरह लगेगा और वे कभी उपन्यास के अन्तर में प्रवेश नही कर सकेंगे, क्योंकि यह अव्वल-आख़िर उपन्यास है और यात्रा-वर्णन इस उपन्यास की पृष्ठभूमि है—वह कैनवस जिस पर उपन्यास के मुख्य-पात्र हसनदीन का चरित्र चित्रित है।

इसी तथ्य से 'गुलमर्ग', 'खिलनमर्ग' तथा 'फ़रोज़न लेक' को देखने के लिए जाने वाले यात्री खन्ना साहब, उनकी बीवी, बच्चा, उप्पल साहब, उनकी भतीजी तथा दूसरे सहयात्री भी सम्बद्ध हैं। वे भी उस पथ के जीवन के अंग हैं, जिनके बिना पथ निर्जीव लगता और हसनदीन बेकार। उपन्यास को ध्यान से पढ़ने पर मालूम होता है कि इनमें मुखर ही नहीं, मूक पात्रों (जैसे ममदू और ईदू, घोड़े और पथ) का भी अपना-अपना अलग अस्तित्व और महत्व है। पहली दृष्टि में लगता है कि इस काफ़िले में तो हसनदीन उसी तरह है, जैसे बारात में कोई नाई। फिर क्या बात है कि पूरे उपन्यास में हमारी दृष्टि सदैव हसनदीन पर ही लगी रहती है, कभी भटककर किसी दूसरे की ओर जाती भी है तो तुरन्त तड़पकर पीछे हसनदीन

के पास लौट आती है ? क्या कारण ह कि अफ़राबट से स्लेजों पर उतरते हुए खन्ना साहब वग़ैरा के साथ हम नहीं फिसलते, बल्कि उनके पीछे बरसाती बिछाकर, उस पर बैठे, बर्फ़ में पाँव धँसायें और छड़ी को बैलेंसिंग रॉड की तरह हाथों में थामे, थकावट से चूर हसनदीन के साथ हम अपने दिल में दर्द और प्राणों में मोह और आँखों में आँसू लिये बिछलते हैं ? और फिर पूरे काफ़िले को छोड़कर क्यों कैमरे का स्टैण्ड खोजने बर्फ़ के पहाड़ पर चढ़ते, टूटे हुए हसनदीन को देखकर हम मर्माहत हो उठते हैं ?

इन प्रश्नों के उत्तर में ही इस उपन्यास की कला और अश्क की सफलता का रहस्य है।

यह उपन्यास कला और वस्तु दोनों के लिहाज से उनके सभी पहले उपन्यासों से भिन्न है। अश्क का प्रमुख क्षेत्र, जैसा कि मैंने पहले कहा, अब तक निम्न-मध्यवर्ग रहा है। ......लेकिन 'पत्थर-अलपत्थर' की आवाज़ निम्न-मध्यवर्ग की आवाज नहीं ह। अश्क ने पहली बार इस उपन्यास में निम्नवर्ग के जीवन को छुआ है। निम्नवर्ग के एक प्रतिनिधि पात्र का चरित्र-चित्रण उपस्थित किया है।

यों इस उपन्यास में भी निम्न-मध्यवर्ग के कई महत्वपूर्ण पात्र—खन्ना साहब, उनकी बीवी, हरनामसिंह, उप्पल साहब, ऊषा और जीवानन्द हैं। लेखक ने उनका पर्याप्त चित्रण भी किया है। फिर भी अकेला हसनदीन उन सब पर भारी पड़ता है। अकिंचन होते हुए भी पूरे उपन्यास पर वह छाया हुआ है। हसनदीन का स्वर ही 'पत्थर-अलपत्थर' का स्वर है।

'बड़ी-बड़ी आँखें' के बारे में लेखक को अपने एक पत्र में श्री कन्हयालाल मिश्र प्रभाकर ने लिखा है कि यह सौ प्रतिशत संस्मरण है और सौ प्रतिशत उपन्यास। हो सकता है कि 'पत्थर-अलपत्थर' को पढ़कर कोई यह कहे कि यह सौ फी सदी ट्रैवेलॉग (यात्रा-वर्णन) है और सौ फ़ी सदी उपन्यास। मेरा अपना ख़याल है कि ये दोनों उपन्यास उपन्यास ही हैं, संस्मरण अथवा

यात्रा-वर्णन नहीं। 'बड़ी-बड़ी आँखें' अश्क ने प्रथम पुरुष में लिखा है और चूँकि अश्क की अनुभूतियाँ गहरी हैं और जिस जीवन के बारे में वे लिखते हैं, उसका सीधा अनुभव प्राप्त करके ही लिखते हैं, इसलिए 'बड़ी-बड़ी आँखें' एकदम संस्मरण-सा लगता है। अश्क अपनी अनुभूतियों पर संस्मरण लिखते तो वह कुछ और चाहे होता, पर 'बड़ी-बड़ी आँखें' नहीं होता।

इसी तरह 'अलपत्थर' की यात्रा का वर्णन यदि अश्क किसी ट्रैवेलॉग में करते तो वह ट्रैवेलॉग ही होता, उपन्यास नहीं। अब हो सकता है, अश्क ने परेज़पुर गाँव टंगमर्ग के निकट देखा हो, लेकिन हसनदीन से वे अमरनाथ की यात्रा में मिले हों और कैमरे की अथवा ऐसी ही कोई घटना सोनामर्ग के रास्ते में हुई हो और अश्क ने वे सब अनुभूतियाँ 'फ़रोज़न लेक' के उस मार्ग में सँजो दी हों। उपन्यास की अपनी माँग है और संस्मरण तथा यात्रा-वर्णन की अपनी-अपनी और अश्क दोनों कलाओं को बखूबी समझते हैं। उनका संस्मरण 'मंटो : मेरा दुश्मन' और यात्रा-वर्णन 'वेपा के नगर में' इसके साक्षी हैं।

हास्य और व्यंग्य के अश्क उस्ताद हैं। उनके दूसरे उपन्यासों में भी ये तत्व पर्याप्त मात्रा में हैं। बल्कि यह कहना भी गलत न होगा कि उनके उपन्यासों में इनका एक महत्वपूर्ण स्थान है। बिना हास्य-व्यंग्य के अश्क अधूरे हैं। अश्क का व्यंग्य कोई मामूली, बौद्धिक अथवा खरौंच पैदा करने वाला व्यंग्य नहीं होता, वह बिलकुल नंगा कर देता है। (मध्यवर्ग की मोटी चमड़ी के लिए यह आवश्यक भी है) वही हाल उनके हास्य का भी है। खन्ना साहब की खिल्ली उड़ाकर, हसनदीन का ख़ाका खींचना, याने खन्ना साहब के निमित्त पाठकों को हँसाकर हसनदीन के निमित्त रुला देना, उनके हृदय को मथ देना कोई साधारण कला नहीं। खन्ना साहब जसे भ्रमणार्थियों का टुच्चापन

अफ़राबट की चोटी पर जीवानन्द और ऊषा की एक झलक दिखाकर ही अश्क पाठकों ही को नही खुद खन्ना साहब को भी महसूस करा देते हैं। फिर उपन्यास में यह देखने की चीज़ ह कि बार-बार अपने नंगेपन को ढँकने का प्रयास करने वाले खन्ना साहब निरन्तर नंगे होते चले जाते हैं और हर तरह सवार को खुश करने का प्रयास करने वाला हसनदीन अपने नंगेपन के बावजूद पाठक की सहानुभूति प्राप्त कर लेता ह।

अश्क की कला का पुराना गुण (जिसे उनके कुछ आलोचक दोष बताते हैं) यह है कि वे अपनी ओर से हल नही बताते, विद्रोह का झण्डा नही गड़वाते, नारे नहीं लगवाते, बड़े कौशल से वे हमारे समाज की कुरीतियों को खोलकर हमारे सामने रख देते हैं। समाज के दुखी, निरीह, सतत सताये जाते पात्रों को उनकी बेबसी और निरीहता के साथ हमारी आँखों के सामने उभार देते हैं और हमारे मन में एक अदम्य इच्छा भर देते हैं, हम चाहते हैं कि हम फूत्कार कर उठें और इस विषमता को जलाकर राख कर दें। 'गिरती दीवारें' की 'चेतन की माँ,' 'यादराम,' 'मन्नी' और स्वयं चेतन, 'गर्म राख' की 'सत्या जी,' 'बड़ी-बड़ी आँखें' की वाणी और नबी—सब ऐसे ही पात्र हैं। हसनदीन अपनी तमाम निरीहता और दयनीयता के साथ इन पात्रों में एक और महत्वपूर्ण पात्र की वृद्धि करता है। अश्क ने उसका नख-शिख ऐसे ही गढ़ा है, जैसे चेतन की माँ का और उतनी ही सहानुभूति उसे प्रदान की है। उपन्यास ख़त्म होने पर हमें ऐसा लगता है, जैसे हसनदीन के गाल पर नही, हमारे गाल पर ही थप्पड़ पड़ा है। हसनदीन के लिए हमारा मन रोता है और उस व्यवस्था के प्रति हमारे हृदय में विद्रोह उभरता है, जिसने हसनदीन के गाल पर थप्पड़ मारा है। यही आँसू और आग 'पत्थर-अलपत्थर' हमारे पास पवित्र थाती के रूप में छोड़ता है।

अश्क ने बड़े-बड़े उपन्यास लिखे हैं और कदाचित् और भी वृहद उपन्यास

वे लिखें, पर मुझे पूरा विश्वास है कि 'पत्थर-अलपत्थर' अपनी लघुता के बावजूद गुरुता का आभास देगा और अश्क-साहित्य ही में नहीं, हिन्दी-साहित्य में एक नया और महत्वपूर्ण अध्याय जोड़ेगा।

१०९ लूकरगंज, इलाहाबाद
२८-९-१९५७

भैरवप्रसाद गुप्त

पत्थर-अलपत्थर

मुर्ग़ ने दूसरी बार अज़ान दी थी जब नूर के तड़के हसनदीन की आँख खुल गयी। आँख खुल गयी, पर वह उठा नहीं। देर तक दम साधे पड़ा रहा कि कहीं किसी दूसरे मुर्ग़, किसी कुत्ते अथवा किसी किवाड़ के खुलने की आवाज़ आये, फिर यह जानकर कि अभी सुबह होने में बहुत देर है, उसने कम्बल से अच्छी तरह बदन ढँक लिया और पुनः सोने की कोशिश करने लगा। लेकिन उसका दिमाग़ परेशान था। दो दिन से उसे कोई सवारी न मिली थी। उसे नींद न आयी। आख़िर जब मुर्ग़ ने तीसरी बार गले की पूरी आवाज़ से गाँव वालों को जगाने का सन्देश दिया तो हसनदीन उठ बैठा। बुझी काँगड़ी उसने फ़िरन के अन्दर से निकाली तो सहसा उसे बचपन की वह घटना याद हो आयी, जब वह पहली बार काँगड़ी लेकर सोया था और उसने अपना फ़िरन जला लिया था और वह बुरी तरह पिट गया था।

'काँगड़ी भी ख़ुदा ने क्या चीज़ बनायी है !' उसने सोचा, 'कश्मीर के लोग इसके बिना कैसे ज़िन्दा रहते ? माँझी हो या किसान, गूजर हो या पण्डित, यहाँ पर तो प्रायः सभी घोर ग़रीबी में दिन गुज़ारते हैं। बरसों में एक बार ईद या 'नौराते' पर फ़िरन सिलवा पाते हैं, सोते-जागते उसे पहने रहते हैं। सर्दी-गर्मी उसी में गुज़ार देते हैं। फिर फ़िरन का जल जाना क़यामत नहीं तो क्या है। उसके बाप ने उसे पीटा तो बुरा नहीं किया। उसने स्वयं अपने बच्चों को पीट-पीटकर काँगड़ी का प्रयोग सिखाया था।'

हाथ से टटोलकर उसने काँगड़ी को कोनेमें रखा, फिर इत्मीनान से सोये हुए अपने बीवी-बच्चों पर एक निगाह डाली और अँधेरे ही में अभ्यस्त पगों से बायीं ओर पड़े घास के ढेर को लाँघता हुआ, वह खिड़की तक गया और उसने कुंडी से खूँटी निकालकर उसके पट खोले और बाहर के अँधेरे में घुलते हुए क्षीण से प्रकाश को देखकर समय का ठीक अन्दाज़ लगाया।

आसमान में बड़ा ही हल्का झुटपुटा था, जिसमें बादल घिरे दिखायी देते थे। तभी मुर्ग़ ने फिर एक बार अज़ान दी और गाँव के परले कोने में कोई दूसरा जवाँसाल मुर्ग़ गले की पूरी आवाज़ से ललकार उठा और नीचे अस्तबल की गर्मी में सोया कोई कुत्ता बाहर निकलकर आकाश की ओर मुँह किये फ़रियाद करने लगा कि या ख़ुदा, देख रात भर का जगा हूँ, तड़के आँख लगी थी कि इन मुर्ग़ों ने ज़मीन-आसमान एक कर दिया, इन कम्बख़्तों पर अपना क़हर नाज़ल कर !

हसनदीन ने खिड़की भेड़ दी, लेकिन कुंडी नहीं लगायी।

अन्दर के गहरे अँधेरे में खिड़की की झिरी में से आने वाले क्षीण से आलोक की वह लकीर साफ़ दिखायी दे रही थी। मुड़कर उसने अपनी बीवी को जगाया कि वह उठे, जाकर लड़के को जगाये और समय से नमकीन चाय तैयार कर दे।

उसकी बीवी फ़िरन के नीचे से काँगड़ी निकालकर अँगड़ाई ले रही थी जब हसनदीन ने बाहर का दरवाज़ा खोला, घास के ढेर में से दोनों बाँहों में घास भरा और अभ्यस्त पगों से लकड़ी की बेडौल और अनगढ़ सीढ़ियाँ उतरता नीचे आया।

गली के बीचों-बीच पानी का छोटा-सा नाला बे-आवाज़ बह रहा था। उसके उधर लम्बे-लम्बे पायों पर खड़ी शाली की कोठियाँ थीं और इधर लकड़ी के टेढ़े-बैंगे अनगढ़ दो-मँज़िले घरौंदे, जिनके छोटे-छोटे अहातों को हर किसान ने धरती में बल्लियाँ गाड़कर, उन पर तख़्ते लगाकर एक दूसरे से अलग कर रखा था। हसनदीन ने अपने अहाते के कोने में घास गिरा दी। निकट ही पत्थर का बड़ा भारी कूँडा पड़ा था। उसने जब से होश सम्हाला, उसे इसी जगह देखा। उसने सुना था कि उसके परदादा ने इसे दो बरस में गढ़कर तैयार किया था और उसमें वह अपने घोड़े को दाना खिलाया करता था। सारे परेज़पुर में वैसा कूँडा कहीं और नहीं था। लेकिन हसनदीन के पास तो अब तीन घोड़े थे। दो उसके और एक उसके भाई का। एक कूँडे से कैसे उनका काम चलता। सो घर की औरतें उस पर शाली फटककर, उससे धान अलग किया करती थीं और कभी जब पैसे होते तो मोटे से डंडे की सहायता से नमक-मसाला तैयार

कर लिया करतीं; नहीं वह कूँडा हसनदीन के घर की पहचान के काम आता और हसनदीन—कूँडे वाला हसनदीन प्रसिद्ध था।

कूँडे पर पैर टिकाये क्षण भर को हसनदीन ने अपनी टेढ़ी गली और उसके टेढ़े मकानों के ख़ाकों पर नज़र डाली। उसने अड्डे पर सुना था कि सरकार लकड़ी के उन घरौंदों की जगह ईंट-चूने के पक्के मकान बनायेगी, जिनमें पक्के फ़र्श होंगे, पक्की सीढ़ियाँ और जिनमें बिजली की रोशनी होगी। पर जाने यह होगा भी या नहीं? होगा भी तो न जाने यह सब देखने को वह ज़िन्दा भी रहेगा या नहीं? लेकिन उसने यह भी सुना था कि 'पहलगाम' के किसानों को नोटिस मिलने वाला है कि गाँव खाली कर दें, सरकार लकड़ी और जगह मुफ़्त देगी, मकान बनाने को पाँच सौ रुपया कर्ज़ देगी; दो मील ऊपर अपने नये घर बनायें! सरकार उन लकड़ी के मकानों की जगह विज़िटरों के लिए छोटे-छोटे बॅंगले बनाना चाहती थी और किसान अपने पैतृक मकान छोड़ना न चाहते थे।......'सरकार के मन की सरकार ही जाने या रब्बुल-आलमीन, जो सब का है और सब के मन की जानता है।' हसनदीन ने सोचा, 'जहाँ तक हमारा ताल्लुक़ है, अगर विज़िटर ज़्यादा आने लगें, हमें लगातार काम मिले तो हम अपने इन्हीं टेढ़े-बेंगे कच्चे घरों में मस्त हैं। मकानों से ज़्यादा हमें काम चाहिए—काम और रोटी!'

वह चाहता तो था कि वहीं कूँडे पर पाँव टिकाये उन नये मकानों की कल्पना करे। पर उसके पास कल्पना नहीं थी, न

उसके लिए समय था और न दिमाग़। उसे तो बस अड्डे पर समय से पहुँचने की जल्दी का अहसास भर था।

उसकी बीवी उसके पीछे-पीछे उसी की तरह बाँहों में घास भरे उतर आयी थी। "या अल्लाह!" हसनदीन ने लम्बी साँस भरते हुए उस अदृश्य शक्ति को पुकारा जिस पर अपने सब भले-बुरे की ज़िम्मेदारी डालकर वह सोच से मुक्ति पा लेता था।

घास की बू पाकर अन्दर अस्तबल में घोड़े हिनहिनाये। "वार वार, वार वार!" सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते उसने उन्हें सब्र का उपदेश दिया तथा और घास लाने ऊपर चला गया।

उसकी बीवी ऊपर नहीं गयी। उसने अस्तबल के एक कोने में पड़े ममदू को जगाया। वह दूर के रिश्ते में उनका चचेरा भाई था। उसकी न ज़मीन थी न जायदाद और वह उनके घोड़ों की रखवाली करता था और दो टुक्कड़ खाकर वहीं पड़ रहता था।

हसनदीन की बीवी मुश्किल से पच्चीस-तीस वर्ष की होगी। गोरा रंग, तीखा नाक-नक्शा और प्यारा-सा नाम—यासमन। पर कश्मीर की अधिकाँश औरतों की तरह उसकी छातियाँ ढलक गयी थीं। परिश्रम, भूख और मैल ने उसे अधेड़ बना दिया था। ममदू के साथ घोड़े बाहर करके वह अस्तबल साफ़ करने लगी। हसनदीन इस बीच में दो-तीन वार घास ले आया था।

घोड़े घास में मुँह मारने लगे और उसकी बीवी अस्तबल साफ़ करके ऊपर चली गयी तो हसनदीन अपने अहाते के बे-किवाड़ गेट में आ खड़ा हुआ। जून का महीना ख़त्म होने को आ गया था

और हवा में यद्यपि ठंडक थी, पर उसकी धार कुन्द हो गयी थी। गेट में खड़े और नाले के सरसराते जल को देखते हुए हसनदीन के जी में आयी कि वह नाले के पानी में वज़ू करके फ़जर की नमाज़ पढ़े। यह अजीब बात है कि ख़ुदा की हस्ती में अन्धविश्वास रखते हुए भी वह नमाज़-रोज़े और सोम-सलवात का उतना पाबन्द न था। घोर श्रम ने उसे इस बात का अवसर ही न दिया था कि वह पाँच बार नमाज़ पढ़े—ख़ुदा-ए-दोजहां सब के दिल की बात जानता है। सब की मुसीबत को समझता है। क्या उसे नहीं मालूम कि हसनदीन कई बार नूर के तड़के उठकर चल पड़ता है, दिन-दिन पैसेंजरों को सैर कराता फिरता है और रात पड़े ही घर आ पाता है। उसे विश्वास था कि ख़ुदा उसकी तकलीफ़ को ख़ूब समझता है और इसलिए वह सोते समय कलमा पढ़कर और दुआ माँगकर ही सन्तोष कर लेता था।

लेकिन हवा में कुछ अजीब-सी ताज़गी थी। नाले के जल में कुछ अचिन्त्र-सा आमन्त्रण था। वह बहुत तड़के उठ गया था। उसके पास समय भी काफ़ी था। तो क्यों न वह आज फ़जर की नमाज़ पढ़ने का सवाब[1] हासिल करे?

यह ख़याल आते ही उसने ममदू को जल्दी से तैयार होने का आदेश दिया और नित्य-कर्म से निबटने बाहर खेतों में निकल गया। वापस आकर उसने नाले के पानी में पहले हाथ धोये, फिर अँजुली में जल भरकर उसे तीन बार सूँघा, फिर तीन बार

---

[1] सवाब=पुण्य

कुल्ला किया, फिर तीन बार मुँह धोया, फिर तीन बार कुहनियों तक हाथ धोये, फिर अँजुली में पानी भर, छिड़क, गीले हाथों को मुँह, नाक, माथे के ऊपर से बालों पर ले जाते और कानों में अँगुलियाँ फेरते हुए मसा किया, फिर तीन-तीन बार दायें-बायें पैर धोये और यों विधिवत् वज़ू करके (उसकी चिर-दिन से जमी मैल तो क्या उतरी, हाँ रस्म पूरी हो गयी) उसने वह कम्बल जो वह गले से लपेटे था ज़मीन पर विछाया और फ़जर की नमाज़ पढ़ने लगा।

रात की स्याही में कुछ और सफ़ेदी मिल गयी थी। बादलों में मटमैला आसमान झाँक रहा था। उस झुटपुटे में परेज़पुर के गूजरों के ये लकड़ी के मकान अजीब से उदास-उदास लग रहे थे। सर्दियों में जब गाँव के मकानों की निचली मंज़िलें बर्फ़ से ढक जाती होंगी और शाली की कोठियों के लम्बे-लम्बे पाये बर्फ़ में दब जाते होंगे तो शायद वे अच्छी लगती हों, पर उस समय तो अपने लम्बे-लम्बे सूने पायों पर खड़ी लकड़ी के बड़े-बड़े सन्दूक़ों-सी वे कोठियाँ उस उदासी को और भी गहरा बना रही थीं। दो-चार कुत्ते अपनी पनाहगाहों से निकल आये थे और बेचैन रूहों-से भटक रहे थे। रात भर खुले में घास चरते रहने वाले घोड़े, पिछली दोनों टाँगें बँधी होने से, फुदककर पिछले पाँव रखते वापस आ रहे थे। गाँव धीरे-धीरे जाग रहा था। लेकिन हसनदीन सब तरफ़ से बेपरवा, पूरी तल्लीनता के साथ ख़ुदा की इबादत में निमग्न था। नमाज़ पढ़, उसने दोनों हाथ फैलाकर दुआ की कि ऐ परवरदिगार!

मैं तेरा ग़रीब बन्दा हूँ, गुनहगार हूँ, लेकिन तू बख़्शनहार है, मैं बेकार हूँ, पर तू कारसाज़ है। कई दिनों से मुझे कोई सवारी नहीं मिली। कुछ ऐसा कर कि मेरे तीनों घोड़े लग जायँ, मुझे अच्छी-तगड़ी सवारियाँ मिलें जो गुलमर्ग ही नहीं, खिलनमर्ग और दोनाले तक जायँ और मेरी पिछले दिनों की कसर निकल जाय !

ख़ुदा ने शायद उसकी दुआ सुन ली थी, क्योंकि जब ममदू और ईदू के साथ वह टंगमर्ग के अड्डे पर पहुँचा तो उसने दूर ही से देखा कि न रैना है, न करीम खां, बल्कि सरदार हरनामसिंह वर्दी डाटे, छोटा-सा डंडा हाथ में लिये डिचुटी बजा रहे हैं। नमाज़ की तल्लीनता में चाहे वह इस बात को भूल गया हो, लेकिन उसके बाद फीके स्च्येरू को नमकीन चाय से निगलते, घोड़ों की ज़ीनें कसते और टंगमर्ग के अड्डे की ओर घोड़े दौड़ाते समय लगातार उसे इस बात की चिन्ता सताती रही थी कि कहीं पिछले तीन दिनों की तरह करीम खां या रैना सुबह की डिचूटी पर न हो और वह निरन्तर मनाता था कि या ख़ुदा, आज हरनामसिंह को डिचुटी पर भेज दो !

"सलाम हुजूर !" दूर ही से हरनामसिंह को देखकर, दाँत निपोरते हुए वह तनिक झुक गया।

"सुना बे आ गया मोर्चे पर।" हुज़ूर ने अपनी खुदरी-खुरदरी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा।

हरनामसिंह मझले क़द का पतला छरहरा सिक्ख था।

कश्मीरी सिक्खों के चेहरे पर जो गोराई और उनके बालों में जो मकई के कच्चे भुट्टों का-सा सफ़ेदी-मायल सुनहरापन होता है, उसका हरनामसिंह के सिर अथवा चेहरे पर निशान न था। उसके चेहरे का रंग ही नहीं, बालों का रंग भी काला-स्याह था। दाढ़ी उसकी न मुँडासे से बँधी थी, न डोरे से कसी थी और उसके क़द ही की तरह छोटी थी। उसके गहरे धँसे कल्लों और चौड़े जबड़ों पर उसकी दाढ़ी के यह अनबँधे छोटे, खुदरे-खुरदरे काले बाल उसके चेहरे को कुछ अजीब-सी रुखाई प्रदान कर रहे थे। 'आ गया बे मोर्चे पर' कहते हुए यद्यपि वह कुछ हँसा भी था और अपनी ओर से उसने हसनदीन से मज़ाक किया था, पर लगता था जैसे वह उसपर कोई अभियोग लगा रहा है।

हसनदीन ने सरदार हरनामसिंह के मज़ाक का कोई उत्तर नहीं दिया। निरीहता से ख़ुशामद-भरी हँसी ओठों पर लाकर वह अड्डे पर घोड़े बाँधने लगा।

वह परेज़पुर का एक छोटा-सा किसान था। थोड़ी-सी धरती, तीन घोड़े और लकड़ी के उस अनगढ़, टेढ़े-बैंगे मकान की वही तीन कोठरियाँ—यही उसकी कुल जायदाद थी। यद्यपि उसकी उम्र चालीस-पैंतालीस बरस की थी, लेकिन सख़्त मेहनत और आधे पेट खाने ने समय से पहले उसके चेहरे पर लकीरें बना दी थीं—मझोला क़द, शरई दाढ़ी-मूँछें, मैले कश्मीरी फ़िरन में ढका शरीर, गहरे धँसे कल्ले, उभरे जबड़े, पीले दाँत—घोड़े बाँधते हुए मन-ही-मन उसने ख़ुदा को धन्यवाद दिया। हरनामसिंह से उसकी मिली-भगत थी। वह ठेकेदार को उसका कमीशन दे

न दे, पर हरनामसिंह को उसका हिस्सा ज़रूर देता था और हरनामसिंह चाहे दो-एक डंडे उसको रसीद कर दे, पर सबसे अच्छी या अमीर सवारी को उसके घोड़े दिलवा देता था।

हाकिम को सलाम करके, वह अड्डे के दोनों होटलों के मालिकों को सलाम तथा बैरों-खानसामों और भिश्तियों से मुलाकात कर आया, क्योंकि कई बार सवारी का मन बनाने में वे लोग बड़ी मदद करते हैं। इस सबसे निबटकर, गले में लिपटा हुआ कम्बल धरती पर बिछाकर वह अड्डे की ढलान पर धूप में लेट गया।

उसे लेटे हुए अभी कुछ ही मिनट हुए होंगे कि दूर से बस आती दिखायी दी।

हसनदीन ने उचककर देखा—प्राइवेट बस थी। उसके साथी एकदम उठे, कुली मुस्तैद हो गये, पर हसनदीन फिर लेट गया। प्राइवेट बसों में ज़्यादातर वे लोग आते थे, जो सरकारी बस के किराये से भी कुछ बचाना चाहते थे। जिनको आराम के मुक़ाबिले में दाम ज़्यादा प्यारे होते। इनमें से अधिकाँश विज़िटर बिस्तरे कुलियों को देकर स्वयं पैदल चलना पसन्द करते थे। हसनदीन अपनी आँख हमेशा सरकारी बस पर रखता था।

लेकिन सरकारी बस भी प्राइवेट के पीछे पहुँची और अड्डे पर हलचल मच गयी। एक-एक बिस्तरे से तीन-तीन कुली लिपट गये। मुसाफ़िरों की जेबें नम्बरों से भर गयीं। बसों से सामान उतारना मुश्किल हो गया। सामान उतरा तो घोड़े वाले बढ़े।

कुछ ग़रीब जो सिर्फ़ ठेके पर घोड़ा चलाते थे, कुलियों में मिल गये।

हसनदीन पीछे खड़ा मुसाफ़िरों का जाइज़ा लेता रहा। उसका माथा सिकुड़ गया, आँखें उकाब-सी तेज़ हो गयीं, पर इतने कुली बसों को घेरकर खड़े थे कि कुछ भी जान पाना मुश्किल था—फटी कमीज़ें या मैले फ़िरन पहने, बरसों से नहाये, नंगे पाँव, घुटनों तक मैल से जमी टाँगें लिये, हड्डी के एक टुकड़े के लिए एक-दूसरे को नोच डालने वाले कुत्तों की तरह आपस में गुँथे जाते थे— तभी सरदार हरनामसिंह सिपाही-सुलभ गालियाँ देते हुए, छोटे क़द के कारण डंडा सिर से ऊपर उठाये उनमें घुस पड़े। फिर, जैसे उनका डंडा हाड़-माँस के इंसानों पर नहीं, मिट्टी के लौंदों पर पड़ रहा हो, उन्होंने जो सामने पड़ा, उस पर बरसा दिया।

पल भर में सब कुली तितर-बितर हो गये। केवल वही रह गये, जिन्हें हरनामसिंह चाहते थे कि वहाँ रहें या जो दो-चार आनों के मुक़ाबिले में डंडों की कोई हक़ीकत न समझते थे। तभी हसन-दीन दूसरे घोड़वानों के संग आगे बढ़ा। उसकी नज़र एक सेठ पर पड़ी—तीस-पैंतीस बरस की उम्र, दोहरा गोरा शरीर, चौड़ा माथा, मक्खन-से गोरे और कुलचे-से फूले गाल, सिल्क की कमीज़ और कार्डराय की पेंट, बाँह पर गर्म कोट—हरनामसिंह से वे गुलमर्ग और खिलनमर्ग का किराया पूछ रहे थे। उनकी बीवी और बच्चा ज़रा दूर सामान के पास खड़े थे. . . .खिलन-मर्ग. . . .हसनदीन चौकन्ना हो गया। हरनामसिंह से आँख मिलते ही उसने दाँत निपोर दिये।

सेठ कह रहे थे, "हमें असील घोड़े चाहिएँ सरदार जी। हममे से कोई घोड़ा चलाना नहीं जानता।"

"आप चलिए, चाय पीजिए। घोड़े मैं भिजवाता हूँ। वक्त मिला तो खुद लेकर आऊँगा।"

होटल का गाइड कितनी देर से सेठ जी की प्रतीक्षा में खड़ा था। सेठ उसके पीछे-पीछे चले तो हसनदीन ने आँखों-ही-आँखों में हरनामसिंह को संकेत किया कि अभी आता हूँ, ज़रा इनसे बात कर आऊँ और वह कुछ अंतर पर उनके पीछे-पीछे चला।

होटल के पिछली ओर छोटा-सा घास का मैदान था, जहाँ से फ़ीरोज़पुर के नाले और उसके परिपार्श्व में पहाड़ों का बड़ा ही सुन्दर दृश्य दिखायी देता था। वहाँ तिपाइयाँ और कुर्सियाँ लगी थीं और मुसाफ़िर वहाँ चाय भी पीते थे और प्राकृतिक दृश्यों का आनन्द भी लेते थे। सेठ अपने बीवी-बच्चे के साथ वहीं एक मेज़ पर बैठ गये। बैरे को उन्होंने चाय और तोस लाने का आदेश दिया।

हसनदीन इधर बरामदे ही में रुक गया और चुपचाप टोह लेने लगा।

तभी सेठ की पत्नी ने कहा, "जितने में चाय आती है, एक पोज़ लीजिए न खन्ना साहब!" और लड़का चहका, "हाँ हाँ, पापो जी (वह अपने बाप को प्यार से पापो जी कहता था।) दो फ़ोटो लीजिए।" और कुर्सी से उठकर अपने चाँचल्य में उसने घास पर एक कलाबाज़ी लगायी।

"ज़रूर ज़रूर!" कहते हुए खन्ना साहब (कि यही सिल्क की क़मीज़ और कार्डराय की पतलून वाले सेठ का नाम था) उठे।

और हसनदीन ने देखा कि खन्ना साहब ने अपने चमड़े के छोटे-से बक्स से, जो उनके कन्धे से लटक रहा था, एक छोटा-सा सुन्दर कैमरा निकाला। खटका दबाकर उसे खोला। वह छोटा-सा कैमरा देखते-देखते बड़ा बन गया। फिर उन्होंने कोट की जेब से, जो उनकी बाँह पर लटक रहा था, एक छोटा-सा तीन पायों वाला स्टैण्ड निकाला और बारी-बारी उसकी तीनों टाँगें खींचकर उसे कितना ही बड़ा बना दिया। कैमरे को स्टैण्ड पर फ़िट करके, उन्होंने उस पर एक काला कपड़ा डाला।

हसनदीन ने बरसों पहले, जब कश्मीर में अँग्रेज़ों का दख़ल था, गुलमर्ग के नीडो होटल में कैमरे वालों को ऐसे ही अँग्रेज़ स्त्री-पुरुषों के फ़ोटो लेते देखा था—ज़रूर ही, यह बड़ी (पैसे वाली) सवारी है, उसने मन में सोचा और वह शैड की ओर भागा, जहाँ सरदार हरनामसिंह अभी तक इसको डाँटते उसको फटकारते अपनी डियुटी सरअंजाम दे रहे थे।

खन्ना साहब ने कैमरा फ़िट करके पहले दो-एक चित्र फ़ीरोज़-पुर के नाले और उसकी घाटी के लिये। इतने में चाय आ गयी। मेज़ पर लग गयी। तब दो फ़ोटो उन्होंने अपनी बीवी और बच्चे के (चाय पीते समय के) लिये—एक सिद्धहस्त फ़ोटोग्राफ़र की तरह उन्होंने बच्चे के हाथ में बिस्कुट और पत्नी के हाथ में चाय का प्याला दे दिया कि पोज़ बिलकुल नेचुरल लगे।

दूसरा पोज़ लेते समय वे कैमरे के बैलो पर का कपड़ा ठीक कर रहे थे कि उसी बस से उतरने वाले एक साथी मुसाफ़िर ने पूछा, "आप क्या फ़ोटोग्राफ़र हैं ?"

"जी नहीं, मेरी तो एक छोटी-सी कपड़े की दुकान है, चाँदनी-चौक में।" खन्ना साहब फ़ोटो लेते हुए रुककर हँसे।

"पर कैमरा तो आपका....!"

"जी बिलकुल मामूली है, ६२० ब्राउनी।"

"लेकिन काला कपड़ा तो आप....।"

"जी बहुत दिन पहले एक मित्र ने यह कैमरा ख़रीदा था। बेकार पड़े-पड़े इसका बैलो ख़राब हो गया....।"

"क्या हुआ इसे ?"

"कपड़ा छिद गया था और रोशनी फ़िल्म पर पड़ने लगी थी। हम कश्मीर की सैर को आये तो उनसे कैमरा माँग लाये। ख़याल था, शिमला स्टूडियो में इसे ठीक करा लेंगे। लेकिन कुछ ऐसे ज़रूरी काम आ पड़े और कुछ ऐसी अफ़रातफ़री में चले कि इसे ठीक कराने की याद नहीं रही। श्रीनगर में महट्टा से पूछा तो उसने कहा, 'इसे ठीक करने में तीन-चार दिन लग जायेंगे, आप अभी काला कपड़ा रखकर काम चलाइए। गुलमर्ग से लौटिएगा तो हम ठीक कर देंगे।'—यह कपड़ा भी उन्हींने दिया है।"

और हँसकर खन्ना साहब फिर फ़ोटो लेने में निमग्न हो गये। दो तस्वीरें अपनी बीवी और बच्चे की लेकर उन्होंने एक तस्वीर ऐसे ली कि वे कैमरे की लोकेशन और फ़ोकस ठीक करके स्वयं अपनी बीवी की जगह बैठ गये और उन्होंने एक तोस मुँह

में ले लिया और उनकी बीवी ने जाकर कैमरे का बटन दबा दिया।

नाश्ता करके वे लोग तैयार थे कि हसनदीन सरदार हरनामसिंह को लिये हुए वहाँ आ पहुँचा। लेकिन लगता यही था जैसे हरनामसिंह स्वयं उसे लेकर आ रहे हों। हसनदीन के पीछे ममदू और उसका बेटा ईदू अपने घोड़ों की लगामें थामे चले आ रहे थे।

"ये लीजिए, आपके लिए असील घोड़े लाया हूँ।" हरनामसिंह ने कहा। "आदमी मोतबर है। आपने हम पर छोड़ दिया तो हमने पचास घोड़ों में से यह तीन ख़ुद चुने। ऐसे शरारती और शोख़ घोड़े हैं इस अड्डे पर कि अनजान सवारी को गिरा देते हैं, पर जो घोड़े मैं लाया हूँ, इन पर बच्चा भी इत्मीनान से चला जा सकता है।"

खन्ना साहब ने हरनामसिंह को धन्यवाद दिया और कहा कि सभी पुलिस वाले यदि इस तरह सहयोग दें तो मुसाफ़िरों की मुश्किल बड़ी आसान हो जाय।

"देख बे इनको तंग न करना और आराम से सब कुछ दिखा लाना।" हसनदीन को डाँटकर और खन्ना साहब को 'जय हिन्द' बुलाकर सरदार हरनामसिंह चले गये तो खन्ना साहब ने घोड़े देखने की इच्छा प्रकट की।

"कुछ फ़िकिर नहीं साब, देखिए साब!" कहते हुए हसनदीन ने बड़ी मुस्तैदी से घोड़ा खन्ना साहब के सामने ला खड़ा किया और एक ओर से काठी थाम उसने उन्हें चढ़ने में भी सहायता दी।

"साब एकदम असील घोड़ा है। सवार को गिरायेगा नहीं। लगाम को ढीला छोड़ देगा तो सीधा अलपत्थर तक ले जायगा।"

खन्ना साहब सन्तुष्ट हो गये। फिर उन्होंने शेष घोड़े देखने की ज़रूरत नहीं समझी।

"यह सामान कैसे जायगा?" घोड़े से उतरकर उन्होंने हसनदीन से पूछा।

"कुली ले जायगा। बारह आने रेट है साब। सिपाही से पूछ सकता है साब।"

खन्ना साहब के पास दो बिस्तरों के अतिरिक्त एक अटैची और एक थैला था। उनका ख़याल था कि यह सारा सामान एक कुली उठाकर ले जायगा। लेकिन जब दोनों बिस्तर दो कुलियों ने बाँध लिये और तीसरा कुली अपने कम्बल में अटैची और थैला बाँधकर पीठ पर लाद, चलने को तैयार हुआ तो खन्ना साहब उसे रोककर हाँपते हुए फिर हरनामसिंह के पास पहुँचे और उन्होंने कुलियों की शिकायत की कि वे बिस्तर के अतिरिक्त कुछ और उठाने को तैयार नहीं।

तब हरनामसिंह ने उन्हें समझाया कि टंगमर्ग से गुलमर्ग का रास्ता बड़ी चढ़ाई का है। बिस्तरे भारी हैं। कुली नहीं उठा सकते। अटैची और बैग अगर छोटे हैं तो उन्हें घोड़वानों को दे दीजिए। कुली को आप बारह आने देंगे, उन्हें दो-दो चार-चार आने ऊपर से दे दीजिएगा।

वापस आकर खन्ना साहब ने सरदार हरनामसिंह के परामर्शानुसार तीसरे कुली से सामान उतरवा लिया और

हसनदीन से कहा कि अटैची वह उठा ले और कैनवस का बैग उसका लड़का उठा लेगा। उन्हें कुछ बख़शीश मिल जायगी।

ममदू मेम साब को लेकर बढ़ गया था। ईदू अभी छोटा था। लेकिन हसनदीन ने कहा, "कुछ फ़िकिर नहीं साब।" और गले से लिपटा हुआ कम्बल धरती पर बिछाकर, उसमें अटैची बाँध, उसने उसे कन्धे पर रखा। उसके लड़के ने बैग उठा लिया। कुली इस बीच बिस्तर लिये शॉर्टकट (छोटे पैदल रास्ते) की ओर बढ़ गये थे। खन्ना साहब हसनदीन की मदद से घोड़े पर चढ़े और अपनी बीवी और बच्चे के पीछे-पीछे गुलमर्ग की सड़क पर बढ़ चले।

कुछ दूर चलकर हसनदीन ने देखा कि उसके लड़के को बैग उठाने में कष्ट हो रहा है। तब बैग उससे लेकर उसने अपना कम्बल खोला और बैग को अटैची केस पर रखकर उसने कम्बल को अपनी पीठ से कुछ इस तरह बाँध लिया जैसे चीनी और तिब्बती स्त्रियाँ-पुरुष बच्चों को पीठ से बाँध लेते हैं।

जब वह फिर चलने लगा तो उसकी कमर झुकी थी और उस पर एक बड़ा-सा कोहान बना था।

टंगमर्ग से गुलमर्ग की टेढ़ी-बैंगी, पर क्षण-क्षण ऊँची होती सड़क पर चढ़ते-चढ़ते हसनदीन ने फिर ख़ुदा का शुक्र अदा किया कि उसने उस नाचीज़ की दुआ कबूल कर ली और उसे उसकी मनपसन्द सवारियाँ दिलवा दीं।

खन्ना साहब के घोड़े के पीछे, कमर पर बोझा उठाये हुए घोड़े के बिदकने पर अनायास 'वार वार, वार वार' पुकार उठते हुए हसनदीन ने हिसाब लगाया कि अगर ये सवारियाँ सचमुच खिलनमर्ग तक जायें और सरकारी रेट भी उसे मिले तो आने-जाने के सत्रह-अठारह रुपये होते हैं। फिर वह उनका सामान भी उठाकर साथ ले जायगा और हर तरह उनकी सेवा करेगा; सेठ रंग-रूप और पहनावे से अच्छा धनी मालूम होता है; पाँच रुपया बख़शीश न देगा तो दो-तीन रुपये तो देगा ही और यदि वह उन्हें बाबा ऋषि ले जाने में सफल हो जाय तो सात-दस रुपये की और डौल हो जायगी। फिर खिलनमर्ग और दोनाले तक जाकर अगर सेठ ने अलपत्थर या फ़रोज़न लेक देखनी चाही तो वह गाइड के रूप में साथ जायगा। दो-एक रुपये बख़शीश मिलेगी। चाय और खाने के पैसे अलग......।

मेम साहब और बच्चा काफ़ी आगे चले गये थे। हसनदीन ने क़दम बढ़ाकर टिटकारी भरी। घोड़े ने तेज़ पग बढ़ाये। कुछ देर तक वह घोड़े के साथ तेज़-तेज़ चलता रहा, फिर जब वे दूसरे घोड़ों के बराबर आ गये तो वह फिर अपने विचारों में जा रमा।

......उसके सामने पिछले कई वर्षों के चित्र घूम गये। हिन्दुस्तान या पाकिस्तान को आज़ादी मिली हो, पर कश्मीर के कारबार का तो इस आज़ादी ने सत्यानास कर दिया। यहाँ इतनी खेती तो होती नहीं कि सारी जनता का पेट उससे भर जाय, फिर यदि किसान अपनी खेतियों से अपने पेट भरने को कुछ पैदा भी कर लें तो ज़िन्दगी के बाकी कामों के लिए पैसा कहाँ से

आये ? कश्मीर का बड़ा धन्धा सदा से विज़िटरों का आना रहा है। माहीगीर हों या कारीगर, किसान हों या मज़दूर— सब इसी धन्धे के बल पर अपनी आवश्यकताएँ पूरी करते रहे हैं और इस आज़ादी ने जिस चीज़ पर सब से भारी चोट की थी, वह यही धन्धा था। पहले बर्बर पठान लूट-पाट मचाते बढ़ आये—उत्पाती बरसाती नदी की तरह गाँव-बस्तियाँ उजाड़ते। फिर जब वे गये तो पीछे कश्मीर रह गया—नदी का उत्पात मिट जाने पर कीचड़-सनी दलदली धरती सरीखा, जिसमें मछलियाँ भूख और प्यास से छटपटाती थीं। हाँ, कुछ गढ़ों में पानी ज़रूर भर गया था और वहाँ मछलियाँ ख़ूब मज़े कर रही थीं। भारत से मिलिट्री आयी थी। उसका आर्थिक लाभ भी था, पर उन्हीं गाँवों या शहरों को, जहाँ उसकी छावनियाँ थीं। विज़िटरों की जगह तो मिलिट्री ले नहीं सकती। हसनदीन के अपने गाँव पर तो भारी बिपत आ पड़ी थी। खेती से दो जून का न सही, एक जून का सही—रूखा-सूखा खाना तो चल जाता था, पर शेष काम धरे-के-धरे रह जाते थे। उसकी बूढ़ी माँ की बड़ी इच्छा थी कि बाबा पामदीन के हुज़ूर में उसने अपने पोते-पोती की शादी के सम्बन्ध में जो मन्नत मानी थी, वह अपनी आँखों के सामने पूरी करे। लेकिन भोजन के संसै पड़े धन की कैसी आस ! रोटी के तो लाले पड़ गये थे, शादी-ब्याह की कौन कहे !

हसनदीन के सामने वह दिन घूम गया जब दस-ग्यारह वर्ष पहले ईदू को लेकर वे सब 'बापम रिषि' के हुज़ूर में गये थे। बात यह हुई कि यद्यपि उसकी शादी को पाँच बरस गुज़र

गये थे, पर उसके घर औलाद न हुई थी। तब उसकी माँ उनको 'बाबा रिशी' के मज़ार पर ले गयी थी। वहाँ ज़यारत-गाह की खिड़की की झिलमिली से उसकी बीवी ने अपनी चोटी से बालों की एक लट काटकर बाँधी थी और मन्नत मानी थी कि अगर 'बापम रिशी' उसकी गोद बेटे से भरेंगे तो वह अपने पहलोठी के बच्चे को ज़यारत की नज़र करेगी। दूसरे बरस ही उसके घर ईदू ने जन्म लिया था। उसकी अम्मा चाहती थी कि मन्नत के अनुसार पहला बच्चा बाबा पामदीन की ख़िदमत में दे दिया जाय, लेकिन न उसकी बीवी राज़ी हुई, न वह ख़ुद। ईदू इतना सुन्दर गुलगोथना बच्चा था कि वे किसी तरह भी उसे ज़यारतगाह की ख़िदमत में देने को तैयार न हुए। माँ ने 'बाबा रिशी' के क़हर-ो-ग़ज़ब का डर दिलाया तो वे दोनों जा मुजाविर की सेवा में उपस्थित हुए। जब हज़रत इबराहीम के लड़के की जगह ख़ुदा ने दुम्बा भेज दिया और उसकी क़ुर्बानी स्वीकार कर ली तो क्या 'बाबा रिशी' उनके बेटे की जगह दूसरी क़ुर्बानी न स्वीकार करेंगे? तब मुजाविर ने बताया कि ज़यारतगाह में इसकी व्यवस्था है और उसी के परामर्श से उन्होंने बच्चे के सिर पर बालों की एक लट छोड़ दी। मुजाविर ने कहा कि इसे उस समय तक न छुआ जाय जब तक 'बापम रिशी' की मन्नत पूरी न कर दी जाय। चूँकि लड़का वे अब वहाँ नहीं देना चाहते, इसलिए वे एक दुम्बे की क़ुर्बानी दें और सौ रुपया ख़ैरात में बाँटें।

और जब ईदू तीन बरस का हो गया था तो अम्मा उन सब

को लेकर 'बापम रिशी' के मज़ार पर गयी थी। हसनदीन की आँखों के सामने वह सारा दृश्य घूम गया—अन्दर मज़ार के सामने हज्जाम ने ईदू के सिर की वह लट बाक़ायदा अपने उस्तरे से काटकर 'बाबा रिशी' के कदमों पर चढ़ायी थी और हसनदीन ने सौ रुपये की नज़र उतारी थी। फिर भरे-पूरे दुम्बे की क़ुर्बानी देकर देग चढ़ा दी गयी थी। उसके गिर्द घेरा डालकर स्त्रियों ने बाबा पामदीन की प्रशंसा में गीत गाते हुए बड़े-बड़े नान पकाये थे और सब को दावत दी गयी थी। मुजाविर ने उन सौ रुपयों में से पचास रुपये रख लिये थे और शेष ग़रीब-ग़ुर्बा में बाँट दिये थे।

हसनदीन का तीन सौ रुपया उठ गया था। पर वह ज़माना ही और था। अँग्रेज़ों का राज्य था और गुलमर्ग उनकी जन्नत थी। हर सीज़न में वे चार-पाँच सौ रुपया बचा लेते थे। सर्दियों का ग़ुज़ारा कर, प्रतिवर्ष उसने सौ रुपये धरती में गाड़े और तीन बरस बाद बड़े धूम-धड़ाके से बाबा पामदीन की मन्नत पूरी कर दी।

उसकी अम्मा ने उसी दिन मज़ार की झिलमिली से तागा बाँधकर दुआ माँगी थी कि यदि उसके बड़े लड़के के घर में एक लड़की हो तो वह दोनों का निकाह 'बाबा रिशी' के हुज़ूर में आकर करेगी। 'बाबा रिशी' की मेहरबानी से अगले ही वर्ष उसके बड़े भाई के घर एक लड़की हुई। जन्मते ही उसकी और ईदू की सगाई कर दी गयी। लेकिन शादी की नौबत नहीं आयी। अम्मा तो चाहती थी कि उसकी आँखों के सामने पोते-पोती की शादी

हो जाय, लेकिन एक साल बाद ही हिन्दुस्तान आज़ाद हो गया और यह क़हर टूट पड़ा।

अम्मा का कहना था कि उसकी बीवी ने अपना पहलोठी का बच्चा 'बाबा रिशी' की ख़िदमत में न देकर बड़ा भारी गुनाह किया है। इसलिए फिर उसकी गोद नहीं भरी और इसी गुनाह के कारण कश्मीर पर यह बिपत टूटी, उन्हें रोटी के लाले पड़ गये और उसके पोते-पोती की शादी रुक गयी।

एक ग़रीबी दूजे बरखुरदारी ! एक तो तंगी का ज़माना, दूसरे अम्मा के रोज़-रोज़ के ताने। हसनदीन झल्ला गया था। 'बाबा नाराज़ हो गये, तो उसी साल क़यामत क्यों नहीं टूटी। साल बाद क्यों टूटी ?' वह एक दिन चिल्ला उठा था, 'तुम जाहिल औरत, तुम्हें इसकी क्या समझ है। शेरे-कश्मीर का लक्चर सुनो तो तुम्हें मालूम हो कि यह बिपत क्यों टूटी।'

यद्यपि उसे 'अलिफ़' से 'बे' न आती थी, लेकिन अॅग्रेज़ों को गुलमर्ग, खिलनमर्ग, अलपत्थर, कांतारनाग, तोसे मैदान और दूसरी जगहों में घुमाते-फिराते वह चन्द अॅग्रेज़ी के शब्द बोलने लगा था और माँ को अनपढ़ और जाहिल समझता था, लेकिन माँ को डाँटने के बावजूद उसके मन में भय था कि 'बाबा रिशी' के हुज़ूर में उन्होंने बड़ा गुनाह किया है। ज़रूर बाबा उनसे नाराज़ हैं। उसके भाई के घर इस बीच में चार बच्चे हुए जब कि उसके यहाँ ईदू के बाद दूसरा बच्चा नहीं हुआ।

"या पीर !" उसके मन का भय एकाएक मुखर हो उठा। "अपने बन्दे के गुनाह बख़्श !"

वह बाबा ऋषि से अपने गुनाह बख़्शवा रहा था कि सामने से एक बेसवार घोड़ा सरपट भागता हुआ आया।

"इसे क्या हुआ ?" अचानक खन्ना साहब ने मुड़कर पूछा।

इससे पहले कि हसनदीन जवाब देता, एक छोटा-सा लड़का उसी घोड़े के पीछे भागता हुआ उनके पास से निकल गया।

हसनदीन चौंका। प्रकृतिस्थ होकर बोला—

"साला ठेकेदार का घोड़ा है। बड़ा तेज़-तर्रार। गिरा दिया होगा सवार को। और फिर पग बढ़ा, खन्ना साहब के बराबर होकर, उसने सरगोशी में कहा, "साब एक नम्बर का उखड़पेंच है ठेकेदार। मिला रहता है अफ़सरों से। हमारा तो घोड़ा साब अपना है। नौकर तो दूर रहा, हम तो अपने लड़के तक को हाथ नहीं लगाने देता। सदा असील घोड़ा रखता है।"

कुछ क्षण तक वह चुपचाप चलता रहा। फिर जैसे अपने-आप से बात कर रहा हो, बोला, "हमारे पास साब, पहले यह घोड़ा नहीं था। दूसरा था। एक बार उसने एक सवार को गिरा दिया। दूसरा दिन हमने उसको बेच दिया। इधर तेज़ घोड़ा नहीं चल सकता साब।" और उसने अपने घोड़ों की तारीफ़ की। "आप लगाम ढीली छोड़ दें तो इधर-से-उधर नहीं होगा और सीधा अलपत्थर तक ले जायगा। हम 'बापम रिशी' की कसम खाकर कहता है। कभी झूठ नहीं बोलता।"

"ये बापम ऋषि और बाबा ऋषि क्या अलग हैं ?"

"नहीं साब, एक ही नाम है। कोई 'बापम रिशी' बोलता

है, कोई 'बाबा रिशी'। हिन्दू-मुसलमान सब का पीर है, बाबा पामदीन।"

"प्यामुद्दीन।"

"जी हाँ, जी हाँ!"

"हमने भी बड़ा नाम सुना है श्रीनगर में। कितनी दूर है गुलमर्ग से उनका मज़ार?"

"अजी साब आने-जाने में सात माइल पड़ता है। साब बोलेगा तो हम आज ही दिखा ला सकता है साब को।"

लेकिन साब चुप रहे। पर हसनदीन चुप नहीं रहा।

"बड़ा मशाहूर 'रिशी' है बाबा पामदीन," बोझ से झुकी कमर के बावजूद तेज़-तेज़ डग भरता और घोड़े के साथ-साथ चलता हुआ वह बोला, "मुग़लों के वक्त में बड़ा ओहदा था उसका। एक हज़ार मोहर मिलता था। कश्मीर दरबार में बड़ा इज़्ज़त था। बाबा साहब रोज़ घोड़े पर सवार होकर सैर को जाता था। एक दिन करना ख़ुदा का क्या हुआ साब, ढलान पर बाबा साहब घोड़े से उतरा कि कुछ क़दम पैदल चले। क्या देखता है कि चींटी का कतार लगा है। सर्दी में वो दाना जमा कर रहा था। अचानक बाबा साहब के दिल में ख़याल गुज़रा कि चींटी जैसा बेडिमाक (बेदिमाग़) जानवर भी आगे का ख़याल रखता है और मैं इंसान होकर 'अशफ़रुल-मलख़ूकात'[1] होकर आक़बत[2] का

---

[1]ठीक शब्द है अशरफ़ुलमख़लूक़ात=सृष्टि के प्राणियों में सबसे बड़ा=इंसान; [2]परलोक।

फ़िकिर नहीं करता। तुफ़ है मुझ पर। बस बाबा साहब वहीं से उलटे पाँव वापस फिरा, नौकरी से जाकर स्तीफ़ा दे दिया, घर-बार को ख़ैरबाद कहा और जाकर ऐशमुकाम के ज़ैन बाबा का पाँव पकड़ लिया। बरसों वहाँ उसने रयाज़त[1] किया। सारे इलाही रमूज़[2] से ख़बरदार हो गया। तब ज़ैन बाबा ने कहा कि जा बेटा, अब तुझे सिखाने लायक मेरे पास कुछ नहीं रहा। बाबा साहब ऐशमुकाम से यहाँ आ गया। यहीं दीन-दुनिया से अलग जंगल में यादे-इलाही में मरसूफ़[3] हो गया। दिनों ही में उसका मशाहूरी[4] सारे कश्मीर में फैल गया और लोग दूर-दराज़ से उसका ज़यारत[5] को आने लगा। अब सरकार हुआ यह कि बाबा साहब जब घर छोड़कर आया था तो उसका बीवी बच्चे से था—वक्त पर लड़का हुआ। जब वह बड़ा हो गया तो बाप की तलाश करता हुआ यहीं आ पहुँचा। बाबा साहब लड़के को देखकर बड़ा खुश हुआ। उसे अपने पास रखा और फिर कुछ दिन बाद उसे हुक्म दिया कि जा तन्हाई में बैठकर यादे-इलाही में मन लगा। अब लड़का सरकार ठहरा जवान। शहर की हवा खाये हुए। उससे वह कठिन इबादत कैसे हो? बुरे लोगों का सोहबत में फँस गया और बुरा काम करने लगा। जब बाबा साहब के पास उसका शिकायत पहुँचा तो उसको बड़ा गुस्सा आया। उसने खुदा से दुआ किया कि या खुदा अगर मेरा लड़का बदचलन हो तो तू उसे इस दुनिया से उठा ले। बाबा साहब ठहरा पहुँचा हुआ फ़कीर, उसका

---

[1] स्वाध्याय; [2] खुदाई भेद; [3] मसरूफ़=व्यस्त; [4] मशहूरी; [5] दर्शन।

दुआ और ख़ुदा टाल दे! लड़के को ख़ुदा ने अपने पास बुला लिया।"

कुछ क्षण तक हसनदीन चुपचाप चलता रहा। फिर बोला, "साब, हमने तो नहीं सुना कि बाबा साहब से किसी ने मन्नत माना हो और वो पूरा न हुआ हो। बड़ी दूर-दूर से लोग 'बाबा रिशी' के दर्शन करने आते हैं।"

अब के खन्ना साहब बोले, "हमने सुना है कि बड़े मनिस्टर भी वहाँ जाते हैं।"

"हाँ साब, बख़्शी साहब ने हुक्म दिया है वहाँ तक बिजली का लैन लगाने का!"

वे बातों-बातों में वहाँ तक पहुँच गये जहाँ घोड़े ने सवारी को गिरा दिया था। उन्होंने देखा कि एक जवान, लेकिन किंचित मोटी लड़की को सहारा देकर दो आदमी चले जा रहे हैं और उनके खाली घोड़े उनके पीछे-पीछे आ रहे हैं।

"क्यों साहब, घोड़े ने गिरा दिया क्या?" खन्ना साहब अपने घोड़े पर बैठे, बराबर आगे बढ़ते हुए बोले।

"जी हाँ!" लड़की के साथ चलने वाले एक अधेड़ ने कहा। "सरकार जाने क्यों ऐसे घोड़ों को अड्डे पर रहने देती है।"

और खन्ना साहब हसनदीन से बोले, "हम तुम्हारे ही घोड़े पर आगे भी जायँगे हसनदीन!"

"कुछ फ़िकिर नहीं साब, जहाँ तुम बोलेगा, हम ले जायगा। सारे गुलमर्ग की सैर करायेगा। साब खिलनमर्ग जायगा तो हम वहाँ भी ले जायगा, उससे आगे जाने को बोलेगा तो

अफ़राबट, अलपत्थर और फ़िरोज़न लेक[1] हम साब को दिखा लायगा।"

"बाबा ऋषि के मज़ार पर लोग बकरे की क़ुर्बानी देते हैं?" खन्ना साहब का मन बाबा ऋषि ही में अटका था।

"हाँ सरकार! यह मेरा लड़का है न ईदू। 'बाबा रिशी' का मेहरबानी से हुआ है। हमने दुम्बे का क़ुर्बानी दिया था और सौ रुपया ख़ैरात में बाँटा था।"

खन्ना साहब जाति से बनिया थे। क़ुर्बानी की बात उन्हें ठीक नहीं लगी। बोले, "क़ुर्बानी देनी क्या ज़रूरी है?"

नहीं साब, मुसलमान क़ुर्बानी देता है। हिन्दू मिठाई-फल चढ़ाता और ख़ैरात बाँटता है। जो भी चढ़ावा चढ़ता है, आधा ज़यारत को जाता है, आधा वहीं ग़रीब-ग़ुर्बा में बाँट दिया जाता है।"

"हम चलेंगे बाबा ऋषि के दर्शनों को!" सहसा खन्ना साहब ने कहा।

गुलमर्ग की चढ़ाई शुरू हो गयी थी। घोड़ों की गति मन्द और उनके पीछे चलने वालों की गति मन्दतर हो गयी।

हसनदीन घोड़े के साथ-साथ चलने के बदले फिर पहले की

---

[1] फ़रोजन लेक—अलपत्थर की झील जब तक जमी रहती है उसे फ़रोज़न लेक कहते हैं।

तरह ज़रा पीछे-पीछे चलने लगा। घोड़ा जब चलते-चलते पहाड़ की दरारों में उगी घास में मुँह मारने को रुक जाता तो वह अचेतन रूप से टिटकारी भर देता और फिर अपनी उधेड़-बुन में लग जाता।

उसने साब को 'बाबा रिशी' जाने के लिए तैयार कर लिया था, इससे वह मन-ही-मन बड़ा प्रसन्न हुआ था। उसने फिर एक बार टंगमर्ग से गुलमर्ग, गुलमर्ग से बाबा ऋषि और वहाँ से वापसी का हिसाब लगाया—तीस रुपये तो निश्चित ही मिल जायँगे, यदि वह उन्हें अलपत्थर और 'फ़रोज़न लेक' तक ले जाय तो पाँच रुपये और कहीं नहीं गये। ख़ुशी से उसे साँस रुकती-सी महसूस हुई। अचानक उसे ख़याल आया, सेठ अगर ज़्यादा दिन यहाँ ठहरने आया हो तो हो सकता है जाते में कोई दूसरा घोड़ा कर ले। 'कर कैसे लेगा?' उसने मन-ही-मन कहा, 'मैं उसे ऐसा ख़ुश कर दूंगा कि वह किसी दूसरे घोड़े वाले की बात ही न सोचे।'

लेकिन इस निश्चय के बावजूद एक-दो डग जल्दी-जल्दी भर-कर सेठ के बराबर होते और चढ़ती साँस को किंचित रोकते हुए उसने पूछा—

"सेठ तुम गुलमर्ग कितना दिन ठहरेगा?"

पहला ज़माना होता तो वह हफ़्तों-महीनों की बात पूछता। लेकिन गुलमर्ग तो उजाड़ था। उसकी पिछली शान-शौकत की याद में उसे देखने भर को मुसाफ़िर आते थे, दो-चार दिन अथवा ज़्यादा-से-ज़्यादा हफ़्ता भर रहकर चले जाते थे।

"हम कल लौट जायँगे।" खन्ना साहब ने कहा, "हमें बहुत जल्दी है, गुलमर्ग देखने के बाद हम पहलगाम जायँगे और वहाँ से अमरनाथ की यात्रा में शामिल होंगे।"

हसनदीन फिर पीछे हो गया। वह प्रसन्न हुआ कि सेठ एक ही दिन गुलमर्ग रहेगा। उसने अन्तर-मन से ख़ुदा का शुक्र अदा किया कि उसने सहर के वक्त की उसकी दुआ स्वीकार कर ली। प्रातः की दुआ का बड़ा महत्व है। ख़ुदा के हुज़ूर में उसकी बड़ी क़द्र है। यों भी उसने बुज़ुर्गों से सुन रखा था कि चौबीस घंटों में कभी मुँह से ऐसी दुआ या बद-दुआ निकलती है जो शब्दशः पूरी हो जाती है, इसीलिए उनका कहना था कि सोच समझकर मुँह से बात निकालनी चाहिए।....आज सुबह यदि उसने कुछ और माँग लिया होता तो वह भी पूरा हो जाता।.... अगर उसने लाख रुपये माँगे होते?....और उसने देखा कि वह फ़जर की नमाज़ पढ़ रहा है और उसने ख़ुदा से दुआ माँगते समय एक लाख रुपया माँगा है। फिर उसने देखा कि वह अस्तबल में एक कोना खोद रहा है कि वहाँ दरवाज़ा लगाने को बल्ली गाड़े। तभी अचानक उसका फावड़ा किसी ठोस चीज़ से टकराता है, वह और खोदता है तो देखता है कि एक काँसे का घड़ा है। जल्दी से खोदना बन्द करके वह गढ़े में मिट्टी डाल देता है कि कहीं ममदू न आ जाय अथवा कहीं कोई पड़ोसी न देख ले। दिन को वह और उसकी बीवी बाहर से अस्तबल पर टाट का पर्दा लगा देते हैं। हसनदीन बहाने से ममदू को ऊपर सुला देता है और आधी रात के वक्त, जब सारा गाँव सोया होता है,

वह और उसकी बीवी हरीकेन की लौ में ज़मीन खोदते हैं (इस बार बाहर के दरवाज़े के पास नहीं, बल्कि अन्दर के कोने में खोदते हैं। पहली जगह दरवाज़े और गली के निकट होने से अवचेतन मन दिवा-स्वप्न में जगह बदल देता है—इस सम्बन्ध में रात और दिन के सपने एक सरीखी सुविधा जुटा देते हैं।) काफ़ी गहराई में, इस तरह सबर के साथ धीरे-धीरे खोदकर कि बाहर या ऊपर आवाज़ न जाय, दोनों मियाँ-बीवी बड़ी सावधानी से काँसे का घड़ा निकालते हैं। ऊपर का ढकना लाख से जड़ा है। बड़ी इहतियात से उसे खोलते हैं। देखते हैं—सोने की मोहरों से भरा है, जो हरीकेन के उस मद्धिम धुँधियाले प्रकाश में भी चमक उठती हैं। हसनदीन मुट्ठी भर मोहरें निकालता है और यासमन के विस्फारित नयनों के आगे उसे खोलता है, जो ठीक से देखने को हरीकेन ऊपर उठाती है। दोनों मियाँ-बीवी चकित, विस्मित, किन्तु अनिर्वचनीय रूप से पुलकित हथेली पर चमचम करती उन मोहरों को देख रहे होते हैं कि हल्का-सा खटका होता है। दोनों चौंकते हैं। ममदू अस्तबल के दरवाज़े में खड़ा है। आँखें मिलते ही खीसें निपोर देता है। दोनों उस घबराहट में उसे अपने भेद का साझीदार बना लेते हैं। हसनदीन कहता है कि घर के जितने प्राणी हैं, उन सब को बराबर-बराबर हिस्से मिलेंगे। अब जब ख़ुदा ने हमें इतनी दौलत दी है कि हम अपनी बाकी ज़िन्दगी आराम से गुज़ारें, हमें चाहिए, अपने घोड़ों को, जिन्होंने तंगी-तुर्शी में हमारा साथ दिया है और भूखे पेट रहकर हमारी ख़िदमत की है, पूरा आराम दें, उनसे आगे को किसी तरह का काम न लें,

एक नौकर उन तीनों की सेवा के लिए रख दें और उन्हें ख़ूब खिलायें-पिलायें और आराम दें। उनकी इसी ख़िदमत को ध्यान में रखते हुए हसनदीन उनके भी तीन बराबर-बराबर के हिस्से करता है। ऐसा करते समय उसकी आकृति एक अलौकिक तेज से उद्भासित हो उठती है।

लेकिन यहीं ममदू का गधापन प्रकट होता है। वह घोड़ों को हिस्सा देने के लिए कभी तैयार नही होता। हसनदीन कुल मोहरों के आठ हिस्से कर, एक ममदू को देना चाहता है। ममदू चौथा हिस्सा माँगता है। हसनदीन इस बात पर भी तैयार हो जाता है कि एक घोड़ा और उसका हिस्सा भी वह उसे देगा। लेकिन वही ममदू जो उसके सामने आँख भी न उठाता था, उसे गालियाँ देने लगता है। जाने कौन पुलिस को ख़बर कर देता है। धड़धड़ाती पुलिस आ पहुँचती है और न केवल घड़ा उठा ले जाती है, बल्कि उन्हें भी साथ पकड़कर ले जाती है।......

हसनदीन ज़ोर-ज़ोर से साँस ले रहा था। उसके माथे पर पसीना आ गया था। घोड़ा पहाड़ में उगी झाड़ियों में मुँह मार रहा था और खन्ना साहब गिरने के भय से अन्धाधुन्ध लगाम खींच रहे थे। सहसा वहीं एक झाड़ी से एक पतली-सी डाल तोड़कर, ज़ोर से गाली देता हुआ, हसनदीन उसकी ओर बढ़ा। लेकिन इससे पहले कि डाली घोड़े के पुट्ठे को छूती, वह चल पड़ा।

हसनदीन ने पीठ के बोझ को ठीक किया और फिर बढ़ चला। उसका मन फिर उसी दिवा-स्वप्न में खो गया। इस बार

उसके अवचेतन ने दूसरी सुविधा जुटा दी। उसने देखा कि ममदू और उसका लड़का घोड़े लेकर कांतारनाग गये हुए हैं। वह अस्वस्थ होने के कारण घर पर रह गया है। उसकी जगह उसका बड़ा भाई चला गया है। योंही, मन को लगाने के लिए, वह अस्तबल में काम करने लगता है कि उसका फावड़ा घड़े से जा टकराता है। वह अपनी बीवी को बुलाता है और दोनों रातों-रात सारी मोहरें निकालकर छत के फूस में दो-दो चार-चार करके छिपा देते हैं। दूसरे दिन शाम को उसका बड़ा भाई, ममदू और उसका लड़का वापस आते हैं। हसनदीन की अस्वस्थता सोने की चमचमाती मोहरों को देखते ही भाग जाती है। वह टंगमर्ग जाकर शराब की बोतल और खाने-पीने का सामान ले आता है। ऊपर से उसकी बूढ़ी माँ और भाई के बीवी-बच्चे भी आ जाते हैं। एक-दो पड़ोसी भी शामिल हो जाते हैं। मर्द लोग पीते हैं और औरतें और बच्चे नमकीन चाय के बदले कहवा पीते और बढ़िया स्च्येरु और दूध-रोटी खाते हैं। सभी गयी रात तक मौज मनाते हैं......कि सहसा छत पर दो बिल्लियाँ लड़ने लगती हैं, एक धमा-चौकड़ी मचा देती है और ठन-ठन मोहरें नीचे गिरने लगती हैं। सारे गाँव में ख़बर फैल जाती है कि हसनदीन की छत से सोना बरस रहा है और फिर होनी की तरह पुलिस आ पहुँचती है; छत का तिनका-तिनका उखाड़ फेंकती है; सारी मोहरें बटोर ले जाती है और घाते में उनको भी पकड़ लेती है और उनके घरों में भरे अख़रोटों के सन्दूक़ उनकी रिहाई के हेतु बिक जाते हैं......

हसनदीन सिर को झटका देता है। अवचेतन मन फिर सुविधा जुटा देता है—

वह देखता है कि एक नहीं, दो घड़े निकले हैं। वह एक घड़ा दूसरी जगह छिपा देता है, ऊपर घास-फूस डालकर घोड़ा बाँध देता है। और टंगमर्ग के दीवान जी से जाकर कहता है कि उसके घर ख़ज़ाना मिला है। वह सरकार को इत्तिला देने चला आया है। वे दो पुलिस के सिपाही लिये पहुँच जाते हैं और जगह खोदकर घड़ा निकालते हैं। जब एक घड़ा निकल आता है तो वे सिपाहियों को इधर-उधर भी खोदने का आदेश देते हैं। जिस जगह से उसने घड़ा निकाला था, वह मिट्टी जल्दी निकल आती है और साफ़ दिखायी देता है कि यहाँ से घड़ा निकाल लिया गया है।... और अन्त वही होता है। वह बेतरह पिटता है, उसकी पत्नी उसके प्राणों के भय से दूसरे घड़े की बात बता देती है और पुलिस उसे चोरी के अभियोग में पकड़कर ले जाती है...

हसनदीन ने ज़ोर से सिर को झटका दिया। उसकी दौलत हर बार हाथ से निकलती रही। तेज़ और किंचित बड़े गिरगिट को पकड़ने की कोशिश करने वाले बिल्ली के बच्चे की तरह वह कभी इधर से और कभी उधर से उसे पकड़ता रहा, पर वह हाथ आकर भी निकल जाती रही। एक लाख की बात दूर रही, उसने कभी एक हज़ार रुपया भी न देखा था। सोने की मोहर उसके दादा-परदादा ने देखी हो तो और बात है, पर उसके दर्शन उसे कभी न हुए थे। सपने में भी वह उन्हें रख पाने के योग्य न था। अन्तिम

बार सिर को झटका देकर उसने क़दम बढ़ाये। लेकिन चढ़ाई खत्म हो गयी थी। रास्ते में छोटा-सा घास का टुकड़ा और दो-एक देवदार के पेड़ थे और आगे जाने वाले घोड़े उन्हीं के झुरमुट में दम ले रहे थे।

खन्ना साहब ने देखा कि उनकी बीवी और बच्चा उतर रहे हैं। कुछ दूसरी सवारियाँ भी उतर गयी थीं और घोड़े वहीं घास में मुँह मार रहे थे।

"क्या बात है, यहाँ रुक क्यों गये?" खन्ना साहब ने सहसा मुड़कर हसनदीन से पूछा।

पीठ का बोझ ज़मीन पर रखते हुए हसनदीन ने कहा, "साब इतनी चढ़ाई चढ़कर आता है, यहाँ घोड़ा आराम करता है, ज़रा हाथ लगाकर देखो कितना पसीना-पसीना हो रहा है।"

खन्ना साहब ने अनजाने घोड़े की पसली पर हाथ रखा। उनका हाथ गर्म पसीने से भीग गया। "हसनदीन हमें घोड़े से उतारो।" उन्होंने सहसा अपनी कार्डराय की पतलून से हाथ पोंछते हुए कहा।

"नहीं साहब, उतरने का ज़रूरत नहीं, तुम बैठो। कुछ फ़िकिर नहीं, घोड़ा पाँच-दस मिनट रुककर चलेगा।"

यद्यपि उनसे पहले आने वालों में एक-दो मुसाफ़िर घोड़ों पर चढ़ने लगे थे, लेकिन खन्ना साहब ने कहा, "नहीं, हम उतरेंगे।"

हसनदीन ने उन्हें सहारा देकर उतार दिया। वे अपने बीवी-बच्चे से जा मिले।

"क्या शकुन थक तो नहीं गया।" उन्होंने अपनी बीवी से पूछा। और फिर उसका जवाब सुने बिना वे अपने लड़के की ओर पलटे। उसकी दोनों बग़लों में हाथ देकर उसे प्यार से झकझोरते हुए, उसे चूमकर उन्होंने कहा, "और तुम कुकू?"

"ज़रा भी नहीं पापो जी!" और वह नवजात बछड़े की तरह वहीं कुदकड़े मारने लगा।

"देखो, देखो घोड़े के पीछे मत जाओ। दोलत्ती मारेगा।" हसनदीन ने बढ़कर बच्चे को रोक लिया।

वह उसका हाथ छुड़ाकर फिर कुदकड़े मारता दूसरी ओर से भाग गया।

क्षण भर तक हसनदीन खड़ा उस बच्चे को देखता रहा। ईंदू भी तो इतनी ही उमर का है। दो-एक साल बड़ा होगा। लेकिन उसके भाग्य में यह सब कहाँ है? उसे तो बचपन ही से रोज़ी कमाने की चिन्ता लग गयी है। अगर कश्मीर में अमन रहा तो वह निश्चय ही ईंदू की शादी करेगा, उसके बच्चों को पढ़ायेगा और उन्हें ऐसा ही बनायेगा। उसे पिछले बरस की एक घटना याद आयी। अँग्रेज़ बच्चों को अपने माता-पिता के लिए डैडी, मम्मी, पापा, मामा कहते देखकर उसे कभी ईर्ष्या न हुई थी। लेकिन इधर ऐसे भारतीय भी आने लगे, जिनका स्तर बहुत ऊँचा न था, जो अफ़सर भी नहीं थे। कई तो उनमें से टुटपुँजिये दुकानदार थे, जिन्हें वे लोग उपेक्षा से 'दालि-विज़िटर' कहते थे—दाल-भात खाकर पैदल कश्मीर की जन्नत का लुत्फ़ उठाने वाले। जब उनके बच्चे भी डैडी-ममी अथवा पापा-मामा पुकारते थे तो हसनदीन का जी

होता था कि उसका इंदू भी उसे अब्बा-अब्बा कहना छोड़ डैडी कहे। और पिछले बरस उसने एक दिन यासमन के सामने अपनी वह इच्छा प्रकट भी की थी।

लेकिन न इंदू उसकी बात समझा, न यासमन। जब उसने अपनी बात समझायी थी तो वह ठहाका मारकर हँस दी थी, कल तुम मुझसे भी कहोगे कि तुम भी पौडर-सुर्ख़ी लगाओ और उन भुतनियों की तरह नंगे सिर, नंगे बदन घूमो। और ईदू ने एक बार भी उसे डैडी नहीं कहा।

इस बात का ध्यान आते ही हसनदीन अपने-आप हँस दिया। लेकिन तत्काल वह गम्भीर हो गया। कुदकड़े मारते उस मृग-शावक-से बच्चे को देखकर उसे ख़याल आया—ईदू शादी करेगा, उसके बच्चे होंगे, स्कूल-कालेज में पढ़ेंगे तो ज़रूर उसको पापा या डैडी बुलायेंगे। उसकी ज़िन्दगी तो भार ढोते बीत गयी, लेकिन ईदू के बच्चे ज़रूर साहब बनेंगे। बख़्शी साहब कहता है—तालीम सबको मुफ़्त मिलेगी, फिर ईदू के साहब बनने के रास्ते में कौन-सी रुकावट रह जायगी, वह न सही, उसका बच्चा तो सुख-आराम पायेगा।

और उसने सोचा कि भविष्य के हवा-महल बनाने के बदले, उसे हाल की फ़िक्र करनी चाहिए। मुसाफ़िरों से पता करना चाहिए कि कोई अलपत्थर या अफ़राबट भी जा रहा है या नहीं? ऊँची जगहों में जाने और दर्शनीय स्थानों को देखने में विज़िटर ही विज़िटरों का मन बनाते हैं।

लेकिन जिन सवारियों के घोड़े अभी रुके हुए थे, उनमें से

कोई भी अफ़राबट अथवा अलपत्थर जाने वाली न थी। एक व्यापारी था जो गुलमर्ग का जायज़ा लेने आया था कि वहाँ कुछ कारबार की सम्भावना है या नहीं। दो सरकारी नौकर थे। केवल दो विज़िटर थे, लेकिन उनका इरादा सप्ताह भर वहाँ रहने का था और वे लोग कुछ आराम करके खिलनमर्ग जाना चाहते थे। यह सूचना हसनदीन ने उनके साइसों से प्राप्त की। घोड़े वहाँ आठ-दस मिनट से ज़्यादा नहीं रुकते थे। कुछ सवार तो उतरे ही न थे, घोड़ों पर ही बैठे थे। जो उतर गये थे, वे फिर सवार हुए और दायें हाथ को ऊपर जाने वाली सड़क की ओर बढ़ गये।

हसनदीन वापस मुड़ा। वह खन्ना साहब से सवार होने को कह ही रहा था कि नीचे से वह पार्टी भी आ पहुँची, जिनके साथ की युवती घोड़े से गिर गयी थी। वह शायद किसी दूसरे घोड़े पर सवार सबसे आगे थी। उसके पीछे सूट-बूट धारी किंचित अधेड़ व्यक्ति थे। तीसरा युवक सबके पीछे पैदल आ रहा था।

खन्ना साहब घोड़े पर सवार होने वाले थे कि उनको देखकर ज़रा रुक गये।

"क्यों साहब, कुछ चोट तो नहीं आयी इनके?"

युवती शर्मा गयी।

"नहीं जी बचाव हो गया," उत्तर अधेड़ आदमी ने दिया।

"कितने दिन का प्रोग्राम है?"

"चार-पाँच दिन ठहरने का इरादा है।"

"हम तो कल ही वापस आ जायँगे। महीना भर किसी तरह

दुकान से छुट्टी पाकर आये हैं। और महीने भर में तो कश्मीर का एक कोना भी ठीक से नहीं देखा जा सकता।"

और खन्ना साहब घोड़े की ओर बढ़े, पर चढ़ने से पहले उन्होंने पूछा, "किस होटल में ठहरने का इरादा है आपका?"

अभी तक तो फ़ैसला नहीं किया, लेकिन चलकर देख लेते हैं। गुलमर्ग होटल है, ख़ालसा होटल है और भी कहते हैं कि बाज़ार में ठहरने का प्रबन्ध है।"

"हम तो ख़ालसा होटल में ठहरेंगे।"

और यह कहते हुए खन्ना साहब हसनदीन की मदद से घोड़े पर सवार हो गये। वे लोग भी ज़्यादा देर तक नहीं रुके। बहुत दूर तक तो पैदल ही आये थे। घोड़ों से उतरे भी नहीं। खन्ना साहब की पार्टी चली तो वे लोग भी चल दिये। युवक सब के पीछे-पीछे पैदल चला। हसनदीन ध्यान से उनकी बातें सुनता रहा था। कुछ दूर चलने पर वह युवक के साथ-साथ चलने लगा। फिर सहसा उसने पूछा :—

"क्यों साब तुम क्या दिल्ली से आया है?"

"अभी तो दिल्ली से आये हैं, लेकिन हम दिल्ली के रहने वाले नहीं हैं।"

"क्या कलकत्ता, बम्बई से आया है?"

"नहीं, हम अफ़रीका से आया है।"

"अफ़रीका, क्या अमरीका का सूबा है?"

"अफ़रीका हिन्दुस्तान और अमरीका के बीच है, जहाँ हब्शी लोग रहते हैं।"

हसनदीन ने ध्यान से उस युवक को देखा। फिर झिझकता हुआ बोला, "लेकिन तुम तो हिन्दुस्तानी है।"

"हाँ, हम हिन्दुस्तानी है, पर हमारा दादा उधर चला गया था। उधर हमारा कारबार है। हम हिन्दुस्तान देखने आया है।"

"कश्मीर में क्या देखा?"

"अभी तो हम आया है। श्रीनगर में डल, नगीन और शालामार-निशात देखे हैं। तीन-चार दिन गुलमर्ग देखेंगे, फिर पहलगाम जायँगे।"

हसनदीन को अपनी बात कहने का अवसर मिला।

"गुलमर्ग तो साब, कश्मीर का जन्नत है। इधर कबाइली लोग ने इसे बरबाद कर दिया, माल, सामान यहाँ से वो साथ ले गया, लेकिन इसका ख़ूबसूरती तो साब, चोर, डाकू नहीं ले जा सकता। अफ़राबट, अलपत्थर और फ़िरोज़न लेक को तो साब, अब भी दूर-दूर से लोग देखने को आता है। अभी दो दिन पहले चार विलायती आया था। और कांतारनाग, और तोसे-मैदान गया था। साब, तुम जब गुलमर्ग आया है तो तुमको 'बाबा रिशी', फ़िरोजपुर नाला, खिलनमर्ग, अफ़राबट, अलपत्थर और फ़िरोज़न लेक ज़रूर देखना चाहिए। हमारा साब तो कल वापस नीचे जाता है। तुम साब, चाहेगा तो जहाँ बोलेगा, हम तुमको घुमायेगा। हमारा घोड़ा साब, एकदम असील है।"

"तुम्हारा साब क्या अलपत्थर और फ़रोज़न लेक देखने जा रहा है?"

"बोल नहीं सकता साब, 'बाबा रिशी' तो वो जाने को बोलता

है। खिलनमर्ग भी शायद वो जाय। आगे तो साब, अगर साथ मिला तो जायगा, नहीं तो खिलनमर्ग से वापस लौटेगा।"

"हम कल खिलनमर्ग जाने की सोचते हैं।"

"अगर साब तुम अफ़राबट और 'फ़िरोज़न लेक' जाना माँगता है तो तुमको सुबह चलना चाहिए। एक बजे अफ़राबट की चोटी पर पहुँचने को माँगता है। अफ़राबट की चोटी से इतना ख़ूबसूरत व्यू मिलता है साब, कि तबियत ख़ुश हो जाता है। हमारा साब अगर ऊपर चलेगा तो हम तुमको फ़िरोज़न लेक तक ले चलेगा। हम साब, गाइड का काम भी करता है . . . ."

हसनदीन अपनी जमा रहा था कि पीछे से वही लड़का एक घोड़े को तेज़ दौड़ाता लाया और उनके पास आकर उतर गया।

"नहीं, नहीं, हम तुम्हारे घोड़े पर नहीं चढ़ेंगे।" उस युवक ने कहा।

"साब दूसरा वाला घोड़ा है। एकदम असील है। उसको तो हम अड्डे पर छोड़ आया है।"

"नहीं हम इतनी दूर पैदल आये हैं तो आगे भी पैदल जायँगे।"

"साब, अभी बहुत रास्ता बाकी है। साब, हम ग़रीब मारा जायगा, ठेकेदार हमारा पैसा काटेगा। साब हम ग़रीब आदमी है।"

और वह लड़का घोड़ा वहीं छोड़कर उसके पाँव पड़ गया। घोड़ा चुपचाप अनासक्त खड़ा रहा। पहाड़ में उगी झाड़ियों में भी उसने मुँह मारने की कोशिश नहीं की। युवक ने निमिष भर

के लिए पाँवों में पड़े उस लड़के और चुपचाप खड़े उस घोड़े को देखा, दोनों की आकृतियों पर कुछ ऐसी निरीहता थी कि वह बिना दूसरा शब्द कहे, लगाम थामकर उस पर जा चढ़ा। और वह घोड़ा जो लगता था कि जाने अब आगे चलेगा भी या नहीं, एकदम दौड़ पड़ा।

"वार वार. . .वार वार!" लड़का उसके पीछे भागता हुआ बोला और घोड़ा मन्थर-गति से चलने लगा। पर इतने ही में वह आगे जाने वाले लोगों के साथ जा मिला था।

हसनदीन ने अपने बोझ को एक बार फिर ठीक किया और क़दम बढ़ाकर चल पड़ा।

'जो आता है गुलमर्ग के बाद पहलगाम जाता है और गुलमर्ग में दो दिन रहता है तो पहलगाम में दो महीने,' हसनदीन ने सोचा, 'पहलगाम के साइसों और किसानों की चाँदी है। गुलमर्ग जिन लोगों के लिए बना था, जो यहाँ की सर्दी में अपने देश की गर्मी पाते थे, वे लोग तो सात समन्दर पार चले गये। अब आते हैं यह हिन्दुस्तानी, जिन्हें गुलमर्ग में खाँसी-ज़ुकाम हो जाता, यहाँ की ठंडी, पाकीज़ा हवा से जिन्हें निमोनिया का डर रहता है। . . . .

'लेकिन उनका भी क्या कसूर है', उसके विचारों ने पलटा खाया। 'गुलमर्ग में है ही क्या, एक ढब की दुकान नहीं, ढब का होटल नहीं, ढब का बाज़ार नहीं, न डाक्टर, न अस्पताल, कोई रहना भी चाहे तो क्योंकर। नीडो होटल है, पर सभी तो नीडो में नहीं जा सकते। रहा पहलगाम, तो उसकी क्या बात है! दसियों जगह तो वहाँ से रास्ते जाते हैं। चन्दनवाड़ी, शेषनाग और

अमरनाथ को वहाँ से लोग जायँ; आड़ू, लिद्दर-वट और कोलोहाई को वहाँ से लोग जायँ; तार-सर, मार-सर, दूध-सर और तुलियन झीलों को वहाँ से लोग जायँ। फिर लिद्दर का किनारा—लोग वहीं खेमों में रहें, वहीं नहायें, वहीं कपड़े धोयें—गुलमर्ग अँग्रेज़ों का बहिश्त था तो पहलगाम हिन्दुस्तानियों की जन्नत है। शेरे-कश्मीर की कोशिशों से जब कश्मीर में अमन हुआ और विज़िटर आने लगे और उसने सुना कि तीन हज़ार आदमी अमरनाथ की यात्रा को गये तो उसने सोचा था कि अगले साल वह अपने घोड़े लेकर पहलगाम चला जायगा। अमरनाथ की यात्रा शुरू हुई है तो अगले साल पाँच हज़ार लोग जायँगे। वह सीज़न भर कमाकर घर आयगा। लेकिन दूसरे सीज़न के शुरू में जब उसने अपना इरादा ज़ाहिर किया था तो उसकी बूढ़ी अम्मा ने रोड़ा अटका दिया—'ख़ुदा मछली को पानी में पैदा करता है, तो वहीं उसे ख़ुराक देता है। उसने हमें परेज़पुर में पैदा किया है तो यहीं खाने को भी देगा, अगर सभी घोड़वान पहलगाम चले जायँ तो वहाँ भी भूखों ही मरेंगे, पहलगाम में अमरनाथ है तो गुलमर्ग में 'बाबा रिशी' है और 'बाबा रिशी' की शोहरत अमरनाथ से कम नहीं। दुआ माँग कि अमन क़ायम रहे और विज़िटर आयँ, कहीं दूसरी जगह जाने की ज़रूरत नहीं रहेगी। नीचे विज़िटर आने लगे हैं तो गुलमर्ग देखने ज़रूर आयेंगे। कोई श्रीनगर आये और गुलमर्ग न आये? अच्छा है दो-दो, चार-चार दिन रहें। रोज़ आयँ-जायँ, रोज़ सवारी मिले। घर की सूखी बाहर की चुपड़ी से भली है।'

और वह यहीं रह गया था। माँ की बात सच निकली थी।

पिछले दो साल से सीज़न कुछ भरने लगा था और इसी साल बख़्शी साहब ने उजड़े गुलमर्ग में दो सरकारी दुकानें खुलवा दी थीं। फिर बात इतनी ही न थी। उनकी खेती भी थी। अख़रोट और ख़ूबानी और आड़ू के पेड़ भी थे। उन्हें पेड़ों से उतारना और बाज़ार में बेचना औरतों का काम न था, यह ठीक है कि उसका भाई खेती देखता था, पर अकेले का वह काम न था।

उसके सामने पिछले कुछ बरस घूम गये, जब कबाइलियों के हमले के कारण कश्मीर में विज़िटर न आने के बराबर आये थे। और उसके परिवार ने इन्हीं पेड़ों की बदौलत अपना पेट भरा था। कपड़े के बिना चल सकता है, पर पेट के दोज़ख को तो ईंधन चाहिए। अख़रोट और ख़ूबानी और आड़ू खा-खाकर उन्होंने दिन काटे थे।

लेकिन अब तो हिन्दुस्तान से चावल और गेहूँ और अनाज आने लगा था और कश्मीर की चीज़ों के बाहर जाने पर बंदिश लग गयी, एक पैसे की सब्ज़ी या दाल या मकई या चावल बाहर न जा सकते थे और उनके पेड़ ख़ूब फल रहे थे। पिछले साल उन्होंने पच्चीस रुपये के अख़रोट बेचे थे। इस साल तो पचास रुपये भर के अख़रोट उतरेंगे। लकड़ी के अनगढ़ सन्दूक अख़रोटों से भरे हुए थे। बीस-तीस रुपये दूसरे फलों के कमा लेना बड़ी बात नहीं। अगर यह सीज़न लग जाय और यदि वह सब ख़र्च निकालकर दो-तीन सौ रुपया बचा ले तो सौ रुपया सर्दियों के लिए अलग करके वह इसी साल ईदू का विवाह कर दे! .....

अचानक उसके कानों में अपना नाम पड़ा। खन्ना साहब उसे

पुकार रहे थे। घोड़ा एकदम रुककर किनारे की झाड़ियों में मुँह मार रहा था और खन्ना साहब बेतहाशा लगाम खींच रहे थे और उनकी डरी हुई आवाज़ सुनायी पड़ रही थी—"हसनदीन—हसनदी–ी–ी–न !"

"साब तुम गिरेगा नहीं, घोड़ा नीचे को झुके तो तुम पीछे को तन जाओ।" वह दूर से चिल्लाया।

"पीछे को तन जायँ, लेकिन तुम साथ-साथ क्यों नहीं चलते ?" खन्ना साहब चिल्लाये, "वो देखो सब लोग कहाँ चले गये। यह कैसा घोड़ा है, जो चलते-चलते बीच में रुक जाता है। और तुम कहते थे—लगाम छोड़ दो तो सीधा अलपत्थर ले जायगा।"

"साब एकदम असील जानवर है, मगर जानवर है, आदमी नहीं। घास पत्ती में मुँह मार देता है। साब ज़रा एड़ी लगायें तो सरपट चले।"

और उसने हाथ की पतली-सी टहनी उठायी और खन्ना साहब ने एड़ लगायी। घोड़ा उछलकर चला तो खन्ना साहब ने बेतहाशा लगाम खींची और हसनदीन चिल्लाया—"वार वार ....वार वार !"

घोड़ा धीमा पड़ा। खन्ना साहब की साँस इतने ही में फूल गयी। "वो लोग देखो कितनी दूर चले गये और यह घोड़ा तुम्हारे साथ ही चलता है, तुम्हारे बिना तो चलता ही नहीं।"

"साब, घबराओ नहीं, हम पहुँच गया है। बस इसी चढ़ाई के बाद गुलमर्ग का मैदान है। हमारी पीठ पर बोझ है. नहीं हम साब का लगाम हाथ में लेकर चलता।"

और बढ़कर उसने घोड़े की लगाम हाथ में ले ली।

चढ़ाई पार करते ही खन्ना साहब ने क्षण भर के लिए हसनदीन को गहरी झील के बाँध सरीखी उस सरकुलर रोड पर रुक जाने को कहा—सामने धानी घास की विशाल हरी तश्तरी-सा गुलमर्ग का मैदान फैला था। तश्तरी के पेंदे की इमारत तथा दूर दायीं ओर लकड़ी के मकानों की एक-सी पंक्ति इस तश्तरी की विशालता को और भी बढ़ा रही थी।

"ख़ालसा होटल कहाँ है?"

हसनदीन ने तश्तरी के पेंदे में जूठन-सी लगी उस इमारत की ओर संकेत कर दिया।

लेकिन दूसरे क्षण खन्ना साहब की निगाह बिलकुल निकट ही बायीं ओर के बैरक ऐसे मकान की ओर खिंच गयी, जिसकी छोटी-सी बगिया में चादर-सा चौड़ा उथला, पर समतल नाला बह रहा था, उसके किनारे तिपाइयाँ और कुर्सियाँ लगाये लोग बैठे थे और ऊपर एक बड़ा-सा बोर्ड टँगा था—'गुलमर्ग होटल'।

"साब एकदम सस्ता होटल है। कुक इसका दिल्ली में काम कर चुका है। खाना साब को ख़ालसा होटल से अच्छा मिलेगा।" खन्ना साहब की निगाह का अनुसरण करते हुए हसनदीन ने जल्दी-जल्दी कहा।

"हम ख़ालसा होटल उतरेंगे," खन्ना साहब बोले। लेकिन उन्होंने देखा कि उनकी बीवी और बच्चा होटल के गेट के पास

रुके हैं और कुली बिस्तरों को होटल की घोड़ों के क़द जितनी ऊँची चार-दीवारी से टिकाये, बीड़ी पी रहे हैं और दूसरी पार्टी के आदमी अन्दर चले गये हैं और होटल के बराण्डे में खड़े शायद कमरे तय कर रहे हैं। उन्होंने हसनदीन से चलने को कहा और वे सरकुलर रोड से नीचे उतरे।

"यह तो बड़ी सुन्दर जगह है," उनकी पत्नी ने उनके निकट आने पर कहा।

"सुन्दर है तो महँगी भी होगी," खन्ना साहब बोले, हमें पहले ख़ालसा होटल जाकर वहाँ कमरों का रेट ले लेना चाहिए।"

"साब, आपको सिर्फ़ एक दिन को रहना है. . . ."हसनदीन ने कहना चाहा।

"चाहे एक घंटे के लिए रहना हो, जब पैसा देना तो पैसे का दाम लेना।"उन्होंने किंचित चिढ़कर उसकी ओर देखा, फिर बोले, "यों हम हज़ारों ख़र्च करते हैं, लेकिन जो ख़र्च करते हैं उसका दाम भी वसूल करते हैं। यह बात तुम्हारी समझ में नहीं आ सकती।"

और सचमुच यह बात हसनदीन की समझ में नहीं आयी।

लेकिन खन्ना साहब आगे नहीं बढ़े। हुआ यह कि कमरा तय करके अधेड़ आयु के वे व्यक्ति बाहर आये और उन्होंने कुलियों से सामान अन्दर ले चलने को कहा।

"क्यों साहब यहीं तय कर लिया।" खन्ना साहब ने पूछा।

"जी हाँ, यह ऊषा बाबा ऋषि जाना चाहती है। अगर वहाँ

चलना है तो कुछ खाना-वाना तैयार कराना होगा। हम लोगों के रहने लायक यही दो होटल हैं और यह ख़ालसा होटल से महँगा नहीं।"

खन्ना साहब होटल के सामने निरन्तर सरकती चादर-से बहते उस झरने को देख रहे थे। उन्हें शायद वह बड़ा अच्छा लग रहा था तो भी उन्होंने कहा, "हमने सुना है, बाज़ार में भी कुछ रहाइश का प्रबन्ध है।"

"दो-एक सिक्खों के ढाबे हैं।" वे बोले, "नीचे के ढाबे का धुआँ ऊपर कमरे में भर जाता है। बटोत के ढाबे-नुमा होटलों की तरह ! मैं तो बटोत में भी रेस्टहाउस के खेमे में रहा था। हमारे लिए वहाँ रात काटना मुश्किल है। फिर ऊषा आज बाबा ऋषि देखना चाहती है। दिन भर यदि कमरा देखने ही में बिता देंगे तो वहाँ कब जायँगे।"

और वे कुलियों के पीछे-पीछे चल दिये।

खन्ना साहब द्विधा में रुके रहे। फिर उन्होंने हसनदीन से कहा, "बाबा ऋषि तो हम भी जाना चाहते हैं, लेकिन बिना दूसरे होटल देखे हम यहाँ नहीं ठहरना चाहते।"

"साब, घोड़ा यहीं छोड़कर तुम कमरा देख लो !" हसनदीन ने उत्तर दिया, "ख़ालसा होटल से महँगा नहीं। पसन्द न आया तो ख़ालसा होटल चलेगा।"

मन में उसने दुआ की—'या ख़ुदा इन्हें यहीं ठहरा ! यहाँ ठहरेंगे तो शायद अलपत्थर तक जायँ, नहीं शायद दोनाला भी न जायँ।'

खन्ना साहब को उसकी बात पसन्द आयी। बीवी और बच्चे को घोड़ों पर बैठे रहने का आदेश देकर वे हसनदीन की मदद से नीचे उतरे और होटल के गेट के अन्दर बढ़े। हसनदीन ने कम्बल की गाँठ खोलकर अटैची केस और हैंड बैग को होटल की चारदीवारी के साथ टिका दिया और कम्बल को लपेटता हुआ खन्ना साहब के पीछे भागा।

बड़ी ही छोटी बगिया में से होते, नाले पर बने छोटे-से लकड़ी के पुल को पार करते और एक दृष्टि नाले की उथली, लेकिन समतल तह में बिखरी बजरी पर डालते हुए, जिसके कारण वह सरकती चादर-सा लगता था, दोनों होटल के बरामदे में गये, और हसनदीन भागकर बैरे को बुला लाया।

नाले के पार सामने बराण्डे ही में तीन और चार नम्बर के कमरे ख़ाली थे। खन्ना साहब ने पहले तीन नम्बर का कमरा देखा—लकड़ी के फ़र्श पर मैली-सी दरी बिछी थी और अँगीठी के नीचे चारपाई पड़ी थी। एक चारपाई इधर दीवार से लगी थी। एक छोटी-सी मेज़-कुर्सी भी थी। कमरा बहुत बड़ा नहीं था। बाथरूम साथ ही था। उसका भी फ़र्श लकड़ी का था। बाहर के कमरे से वह बड़ा था अथवा ख़ाली था, इसलिए बड़ा लगता था।

चार नम्बर कमरा और बाथरूम दोनों छोटे थे। चारपाई वहाँ एक ही आ सकती थी। तीन नम्बर का चार और चार नम्बर का तीन रुपया दैनिक किराया होटल के बैरे ने बताया।

खन्ना साहब आश्वस्त हुए, क्योंकि उनके मित्र ने श्रीनगर में

यही बताया था कि ख़ालसा होटल में कमरा तीन-चार रुपये रोज़ पर मिल जायगा। किन्तु मुँह-माँगे दाम दे देना उनकी कारोबारी वृत्ति को स्वीकार नहीं था, इसलिए उन्होंने चार रुपये वाले के दो और तीन रुपये वाले का एक रुपया कहा।

बैरे ने कुछ उत्तर नहीं दिया। हिक़ारत की एक दृष्टि उन पर डालता हुआ वह चला गया।

'यह कैसी धनी सवारी है ?' क्षण भर को हसनदीन के मन में कौंधा। लेकिन दूसरे क्षण उसने मन को समझाया कि अँग्रेज़ों का समय नहीं रहा, हिन्दुस्तान आज़ाद हो गया तो क्या हुआ, हिन्दुस्तानियों की दास-वृत्ति तो नहीं गयी। 'बड़े-से-बड़ा अमीर आदमी भी भाव-ताव करना नहीं भूलता।' यह बात वह पिछले दो-तीन वर्षों के अनुभव ही से जान गया था। इसलिए उनकी इस बात को नज़रअन्दाज़ करते हुए उसने उन्हें समझाया कि चाहे वे घंटों सारे गुलमर्ग में मारे-मारे फिरें, इस किराये पर उन्हें कमरा नहीं मिलेगा। ढाबे के ऊपर शायद दो रुपये में मिल जाय, पर वहाँ रहने पर मेम साब और बच्चे को तकलीफ़ होगी। बाथरूम वहाँ है नहीं और सख़्त सर्दी में बाहर जाना पड़ेगा। "साब मैं उसको बोलता हूँ। शायद वो चार के बदले तीन और तीन के बदले दो मान जाय।" उसने खन्ना साहब से कहा।

बैरे की उस हिक़ारत-भरी नज़र से खन्ना साहब स्वयं सकपका गये थे, इसलिए जब हसनदीन ने उन्हें समझाया तो वे तत्काल मान गये।

यों सेठ को मनाकर हसनदीन बैरे के पास गया और उसने उसे मना लिया।

"किस कमरे में सामान रखेगा साब ?" आकर उसने खन्ना साहब से पूछा।

"चार नम्बर में !"

"साब उसमें तो एक ही पलंग है। मेम साब और बच्चा को तकलीफ़ होगा।" हसनदीन की आँख में आश्चर्य का जो भाव था, वह उनसे छिपा नहीं रहा। बराण्डे से एक कुर्सी घसीटकर नाले के किनारे रखते और उस पर पसरते हुए बड़ी बेपरवाही से उन्होंने कहा, "अरे भाई, हमको पलंग-वलंग की क्या ज़रूरत है। पहाड़ पर आने को हम लम्बी पिकनिक समझते हैं। हम पहाड़ पर जाते हैं तो हमेशा ज़मीन पर सोते हैं।"

"पर साब यहाँ ठंड है, बच्चा को सर्दी लग जायगा।"

खन्ना साहब उससे हज़ारों रुपया ख़र्च करने की बात कह चुके थे। तभी वहाँ बैरा भी आ गया, उसकी आँखों में उनके प्रति जो घृणा का भाव था, उसे वे झुठला देना चाहते थे, इसलिए उसी शाहाना बेपरवाही से उन्होंने कहा, "अरे भाई तो तीन नम्बर का ले लो। क्या फ़र्क पड़ता है। मेम साहब और बच्चे को जाकर ले आओ ! हम यहीं बैठते हैं।"

हसनदीन बैरे से बात पक्की कर, बाहर भाग गया और दूसरे क्षण खन्ना साहब की श्रीमती बच्चे `
आगे-आगे आ गयीं।

"तीन नम्बर का कमरा लिया है।" खन्ना साहब ने वहीं बैठे-बैठे कहा। और ज़ोर से अँगड़ाई ली।

अपने साम्राज्य में प्रवेश करने वाली सम्राज्ञी की तरह खन्ना साहब की बीवी उस कमरे में दाख़िल हुई और उसने हसनदीन को आदेश दिया कि वह कुलियों से सामान उतरवाये। फिर वह खट-खट करती बाहर आयी और उसने खन्ना साहब से पूछा—

"कितना किराया है रोज़ का ?"

"तीन रुपये।"

"सस्ता नहीं था ?"

"चार नम्बर का कमरा दो रुपये में मिलता था, लेकिन वहाँ दो चारपाइयाँ नहीं आ सकतीं। ज़मीन पर सोना पड़ता।"

"सो लेते, पहाड़ पर आकर भी चारपाइयों पर सोये तो सैर का क्या मज़ा रहा !"

"यहाँ ज़्यादा ठंड है और फिर बच्चा साथ है, रिस्क (Risk) नहीं लेना चाहिए।" और यह कहते हुए उन्होंने बराण्डे की तरफ़ देखा कि कहीं हसनदीन ने उनकी बातें तो नहीं सुन लीं।

खन्ना साहब की बीवी वापस चली गयी और वे नाले की उस फिसलती-सी चादर को देखने लगे, दूसरे क्षण उनका बच्चा उनके पास आ बैठा।

कुली सामान कमरे में छोड़, और मेम साहब के आदेशानुसार बिस्तर खोलकर और उन्हें चारपाइयों पर बिछाकर आ गये थे। खन्ना साहब ने उन्हें विदा किया। हसनदीन ज़रा

अंतर पर चुपचाप आ खड़ा हुआ कि साहब उधर ध्यान दें तो बाबा ऋषि का प्रोग्राम तय करे!

"पापो जी यहाँ फ़ोटो नहीं लेंगे?" बच्चे ने कहा।

"ज़रूर लेंगे!" पापो जी बोले, "ज़रा तुम्हारी मम्मी आ जाय।"

बच्चा उठा और उन अधेड़ आयु वाले साहब से जा मिला जो बराण्डे के अपने कमरे के बाहर खड़े थे। उन्हें घसीटता हुआ वह अपने पापा के पास ले आया।

"आइए साहब, आइए आइए, बैठिए!"

और खन्ना साहब दूसरी कुर्सी घसीटकर वहाँ ले आये।

तब बातों-बातों में मालूम हुआ कि उन अधेड़ उम्र वाले व्यक्ति का नाम ज्ञानचन्द्र उप्पल है। दिल्ली के एक कॉलेज में प्रोफ़ेसर हैं। साथ में उनकी भतीजी है, (खन्ना साहब ने उसे उनकी बुढ़ापे की नयी ब्याही पत्नी समझा था, क्योंकि उसकी आयु तीस-बत्तीस की ज़रूर थी।) बी० ए० है, उसकी तबीयत कुछ ख़राब हो गयी थी, इसलिए उसे ले आये हैं।

खन्ना साहब ने अपना परिचय दिया और पूछा, कौन-सा सब्जेक्ट पढ़ाते हैं।

उन्होंने बताया कि उन्होंने इतिहास और अर्थशास्त्र में एम० ए० किया है और अर्थशास्त्र में डॉक्टरेट ली है। पढ़ाते वे अर्थशास्त्र हैं, लेकिन आवश्यकता पड़ने पर इतिहास की कक्षाएँ भी ले लेते हैं।

"यह लड़का आपका रिश्तेदार है क्या?"

"नहीं, यह भी कश्मीर देखने आया है। बड़ा भला लड़का है। अकेला था। हमने साथ मिलकर हाउस-बोट ले लिया, इसलिए यह हमारे साथ गुलमर्ग आ गया। ...." और कुछ रुककर उन्होंने पूछा, "आप चल रहे हैं बाबा ऋषि?"

"इरादा तो है।"

"खाना खाकर चलेंगे या वहाँ चलकर खायेंगे? सुना है वहाँ ऋषि की समाधि से ज़रा इधर झरना बहता है। उसी के किनारे खाना खायँ! दरी साथ ले चलेंगे।"

"जैसी आपकी इच्छा।"

"तो मैं कुछ सेंडविच तैयार करा लूँ, आप...."

"हमारी फ़िक्र न कीजिए। अव्वल तो हमने टंगमर्ग में काफ़ी नाश्ता कर लिया था, फिर हम साथ पराँठे लाये हैं...."

श्री उप्पल चले गये। खन्ना साहब ने देखा—हसनदीन उनकी बात सुन रहा है। उन्होंने अपना रुख़ उसकी ओर मोड़ लिया।

"......ये सेंडविच-फ़ेंडविच हमसे नहीं खायी जातीं, कहाँ शुद्ध घी में रचे पराँठे और कहाँ ये मैदे की सेंडविचें!" और वे स्वयं हँसे।

हसनदीन ने अँग्रेज़ों को सदा अण्डे या पनीर की सेंडविच पिकनिकों पर साथ ले जाते देखा था। उसे स्वयं भी उन्हें खाने का अवसर मिला था और अपने मोटे चावलों या मकई की रोटी और स्च्येरू के मुक़ाबिले में वह उसे अच्छी भी लगी थीं, लेकिन खन्ना साहब को हँसते देखकर वह भी समर्थन के रूप में हँस

दिया। मन-ही-मन उसने बाबा ऋषि के हुज़ूर में सिर झुकाया, जिन्होंने उसके मन की मुराद पूरी की थी, फिर वह बाहर ईंदू और ममदू को यह ख़बर देने चला गया कि साहब अभी बाबा ऋषि देखने चलेंगे।

जब वे लोग बाबा ऋषि के लिए चलने लगे तो उप्पल साहब ने सहसा ऊषा से कहा कि एक दरी ले ले।

"साब तुम भी एक दरी ले लो।" हसनदीन ने खन्ना साहब को सुझाया।

"क्यों ?"

"साब बैठने को, खाना-वग़ैरा खाने को, मेम साब और बच्चा के आराम करने को।"

"वहाँ क्या घास नहीं है ?"

"है साब।"

"तो फिर चलो ! इन नज़ाकतों और नफ़ासतों के हम क़ायल नहीं—'घर में चाहे गद्दों और गदेलों पर सोओ, लेकिन वक्त आने पर सूखी धरती पर सोने में मत झिझको'—अपने बच्चे को मैं यही सिखाता हूँ।"

उप्पल साहब और उनकी पार्टी आगे निकल गयी थी। अपनी बीवी और बच्चे को घोड़ों पर सवार करके खन्ना साहब स्वयं भी हसनदीन की मदद से घोड़े पर सवार हुए।

कुछ दूर मैदान में चलकर वे बाज़ार के इस किनारे से पीछे की ओर को, कुछ ऊपर की तरफ़ बढ़े। हसनदीन ने उन्हें

बायीं ओर दुकानोंके खण्डहर बताये, जिन्हें कबाइलियों ने लूटकर जला दिया था और फिर दो-तीन वर्षों की निरन्तर बर्फ़बारी ने ढा दिया था।

"पहले क्या बर्फ़ नहीं पड़ती थी ?" खन्ना साहब ने पूछा।

"ख़ूब पड़ता था साब, पर हटा दिया जाता था। लेकिन जब गुलमर्ग लुट गया और लड़ाई शुरू हो गया, विज़िटर लोग आना बन्द हो गया तो ये सब दुकान अपने-आप ढह गया।"

और हसनदीन के सामने वे दिन घूम गये जब कबाइलियों की सेना का एक हिस्सा बारामूला से श्रीनगर को जाता हुआ गुलमर्ग को मुड़ आया था। टंगमर्ग और गुलमर्ग पर उन्होंने अधिकार कर लिया था और गुलमर्ग और टंगमर्ग की लूट से पाँच सौ ट्रक भरकर साथ ले गये थे।

उस सूने खण्डहर बाज़ार की समाप्ति पर एक रास्ता नीचे की ओर बाबा ऋषि को जाता था। खन्ना साहब ने हसनदीन से कहा कि वह लगाम थामकर उनके साथ-साथ चले और उन्होंने आवाज़ देकर ईदू और ममदे से भी कहा कि वे घोड़ों को थामकर चलें।

"साब कुछ फ़िकर नहीं। ढलान पर घोड़ा उतरे तो पीछे तनकर बैठो!"

खन्ना साहब पीछे को तनकर बैठ गये, पर हसनदीन ने आगे बढ़कर लगाम थाम ली।

तब जाने क्यों खन्ना साहब ने फिर वही सेंडविचों वाली बात

चला दी। बोले—"हम लोग दिल्ली में जब पिकनिक पर जाते हैं तो मालूम है क्या साथ ले जाते हैं?"

क्षण भर वे हसनदीन का उत्तर सुनने को रुके।

जब हसनदीन एक बार उनकी ओर देखकर, बिना उत्तर दिये उसी तरह घोड़े की लगाम थामे चलता रहा तो खन्ना साहब सोल्लास बोले, "ये सेंडविच-फ़ेंडविच, जैम-फ़ैम नहीं, आलू-मूली के पराँठे और बढ़िया जमा हुआ दही या फिर शलजम और गोभी का अचार! ख़ूब घूमने-फिरने और धमाचौकड़ी मचाने के बाद अचार या दही के साथ आलू के पराँठे खाने का मज़ा खाने वाले ही जान सकते हैं।"

और जैसे खन्ना साहब कल्पना ही में वह स्वाद लेने लगे थे, कुछ क्षण तक चुपचाप, पीछे को तने, घोड़े पर बैठे चलते रहे, फिर बोले, "लेकिन आज के ये बेचारे आधे साहब आधे हिन्दुस्तानी लोग करें भी क्या! उन पराँठों को हज़म करने के लिए आँतें भी तो मज़बूत चाहिएँ। पंजाबी खाने को पंजाबी ही पचा सकते हैं।"

हसनदीन बहुत से ऐसे पंजाबी साहबों को जानता था जो अँग्रेज़ों के ज़माने में भी गुलमर्ग आते थे और रहन-सहन में, खाने-पीने में किसी तरह अँग्रेज़ों से कम न थे। "साब इधर तो पंजाबी लोग भी ॲंग्रेज़ के माफ़िक खाना खाता और कपड़े पहनता है।" सहसा उसने पलटकर कहा।

"अब पहनने को तो हमीं पैंट-कोट पहन लेते हैं," खन्ना साहब बोले, "लेकिन खाना तो भाई हम अपना ही खाते हैं। यह उबला

हुआ गोश्त और सब्ज़ी, तरकारियाँ बिना नमक-मिर्च और मसाले के, यह भी कोई आदमियों का खाना है ! कहाँ रोस्ट मटन और कोल्ड मटन और कहाँ कोरमा और रोग़नजोश ! कहाँ डबलरोटी की सलाइसें और कहाँ घी में रचे हुए पराँठे ! और फिर भाई यह पैंट-कोट भी हम बाहर ही पहनते हैं। यहाँ घोड़ों पर जगह-जगह घूमना पड़ता है, इसके लिए यही लिबास अच्छा है। लेकिन नीचे तो हम सिवाय तहमद के और कुछ नहीं पहनते। जो मज़ा लम्बे कुर्ते और तहमद में है, वह साला इन कोट-पैंटों में क्या होगा ?—गले में सिल्क का लम्बा कुर्ता, कमर में सिल्क का तहमद और पाँव में कमालिये का जूता—लगता है जैसे आदमी को पंख लग गये हों—पंजाबियों की सेहत का राज़ इसी खुले खाने-पीने और खुले रहन-सहन में है।''

अब हसनदीन को कहने के लिए कुछ बात मिली, हँसते हुए बोला, ''हाँ साब, पंजाबी लोग का क्या बात है, ख़ूब खाने-पीने और मौज उड़ाने वाला आदमी है। पाँच-छः साल पहले का बात है, एक पंजाबी साब हर साल गुलमर्ग आता था। यहीं नीडो में ठहरता था। आते ही हमको ख़बर देता था कि हसनदीन अपना घोड़ा लेकर आओ। वह हमारे घोड़े के सिवा किसी दूसरे पर चढ़ता नहीं था। एक बार साब, हम उसको अलपत्थर ले गया। ऊपर अफ़राबट पर तूफ़ान आ गया। बर्फ़-गाड़ी कोई थी नहीं। साब हम नीचे मोमजामा बिछाकर आगे बैठा, साब को हमने पीछे बैठाया और हम बर्फ़-गाड़ी की तरह फिसलता साब को नीचे ले आया। साब इतना ख़ुश हुआ कि उसने हमको दस रुपया इनाम दिया।

बख़शीस देने में वह किसी अँग्रेज़ से कम नहीं था।"

"अरे पंजाबियों की क्या बात है", खन्ना साहब ने दायें हाथ से हवा को चीरते हुए कहा, "दिल के तो दरिया होते हैं दरिया।" और उन्होंने अपनी एक दरियादिली का किस्सा सुनाना शुरू किया कि किस तरह पिछले इतवार उन्होंने डल की सैर करने के लिए दिन भर को एक शिकारा लिया, शालामार, निशात, चश्मा-शाही देखते हुए वापसी पर नेहरू पार्क में रुककर अमीराकदल आने का प्रोग्राम था। वहीं एक हाउस-बोट में वे ठहरे थे। शिकारे वाला तेरह रुपया माँगता था, दस रुपये में फ़ैसला हुआ। लेकिन जब वे वापस आये तो उन्होंने उसको पन्द्रह रुपये दिये।

और यह किस्सा बताते हुए उनके चेहरे पर एक अलौकिक उल्लास और आभा झलक उठी।

"लेकिन वो पंजाबी साब कभी मोल-भाव नहीं करता था।" हसनदीन ने घोड़े को एक नाले से बचाकर निकालते हुए कहा।

क्षण भर को खन्ना साहब के चेहरे का उल्लास हवा हो गया। लेकिन जब घोड़ा सहज भाव से उस नाले को लाँघ गया तो वे बोले, "हम भाई कारोबारी आदमी हैं। मोल-भाव किये बिना तो हम एक क़दम नहीं चल सकते और हमारा विश्वास है कि हिसाब माँ-बेटी का और बख़शीस लाख टके की!"

और जैसे इस बात से उन्होंने हसनदीन की बात को काट दिया हो, वे फिर ख़ुशी से फूल उठे। हसनदीन ने भी उनकी हाँ में हाँ मिलायी, "हाँ साब यह बात तुम ख़ूब बोला है, हम भी इसको मानता है।"

और खन्ना साहब ख़ुश होकर अपने दादा का किस्सा सुनाने लगे कि वे कितने उदार-दिल थे। कौड़ी-कौड़ी जोड़कर उन्होंने लाखों रुपये पैदा किये, भारी कारोबार फैलाया, लेकिन एक दिन बात आ पड़ने पर उन्होंने सारी ज़िन्दगी की कमाई पलक झपकते दान कर दी।

हसनदीन की उत्सुकता ऐसे हातिमताई की कहानी सुनने को बढ़ रही थी कि सहसा खन्ना साहब ने देखा, उनके बच्चे का घोड़ा दौड़ने लगा है और कुक्कू लगामें खींचने की बजाय उन्हें ढीली छोड़े घोड़े को एड़ लगा रहा है और वे भयातुर होकर चिल्ला पड़े और यद्यपि हसनदीन ने उन्हें विश्वास दिलाया कि घोड़ा गिरायेगा नहीं, लेकिन खन्ना साहब ने उसे घोड़े के पीछे भगा दिया कि उसे रोके और ईंदू को हिदायत दे कि घोड़े की लगाम न छोड़े।

बाबा पामदीन की समाधि पर पहुँचकर हसनदीन ने छोटे-से बाज़ार के सिरे पर घोड़े रोक दिये और खन्ना साहब को सहारा देकर उतारा और संकेत करते हुए कहा, "साब 'रिशी' का ज़यारतगाह उस तरफ़ है। घोड़ा यहीं तुम्हारा इन्तज़ार करेगा। पहले तुम 'रिशी' का दर्शन करेगा या लंच खायगा? तुम्हारा साथी लोग तो वो देखो, उधर जा रहा है। ढलान पर शायद आराम करेगा।"

"नहीं हम लोग पहले बाबा ऋषि के दर्शन करेंगे।" खन्ना साहब ने उत्तर दिया।

लेकिन उनका लड़का घोड़े से उतरते ही भागकर एक दुकान पर पहुँच गया था और हरे मनकों की माला लेने के लिए शोर मचा रहा था।

खन्ना साहब, और उनके पीछे-पीछे हसनदीन दुकान पर पहुँचे —

"अरे यह तो लड़कियों की माला है। तुम लड़के हो या लड़की ?" खन्ना साहब ने बच्चे को खींचते हुए कहा।

छोटा-सा बाज़ार था। दो-तीन दुकानें थी, जिनमें कश्मीरियों की ज़रूरत का सामान था—चावल, आटा, दाल, राजमाश स्च्येरू, नान, दूध-रोटी, लवास, हरी चाय, बीड़ी, चार मीनार और सस्ते सिगरेटों की डिब्बियाँ, दियासलाइयाँ, कुछ सस्ते कपड़े, टोपियाँ इत्यादि. . . . विज़िटरों के लिए तो सिवाय रंगीन पत्थरों की मालाओं और चाँदी के दिखायी देने वाले, पर वास्तव में गिलट के गहनों के अतिरिक्त कुछ न था।

"अरे साब ले दो बच्चा को माला !" हसनदीन ने पीछे से कहा।

खन्ना साहब ने एक खोखला ठहाका लगाया, "लो देखो कुक्कू, हसनदीन तुम्हें लड़की बनाने को कहता है।"

पर तब लड़का कुल्ले ऐसी कश्मीरी टोपी लेने की ज़िद करने लगा।

खन्ना साहब और भी ज़ोर से हँसे, "यह तो कश्मीरी साईसों की टोपी है। यह देखो हसनदीन ने पहन रखी है। तुम क्या हातो बनोगे ?"

तभी श्रीमती खन्ना नेपीछे से आकर लड़के का हाथ खींचा—

"चलो, पहले ही देर हो गयी है। बाबा ऋषि के दर्शन कर खाना खायेंगे, फिर जो चाहो, ले देंगे!"

उनकी बीवी बच्चे का हाथ पकड़े आगे-आगे चली तो खन्ना साहब भी हँसते हुए पीछे चले। बच्चा ज़िद कर रहा था और उनकी बीवी समझाती हुई उसे बरबस लिये जा रही थी और हसनदीन सोच रहा था—'अगर साब बच्चे को टोपी ले देता तो क्या बिगड़ जाता। क्या माला पहनने से वो लड़की और टोपी पहनने से साईस बन जायगा? यह साब कैसा है जो आठ आने-रुपये के लिए बच्चा को रुला रहा है ......'

"हसनदीन चलो तुम आगे-आगे!" सहसा खन्ना साहब ने उसकी विचार-धारा तोड़ते हुए कहा।

ईंदू और ममदे को वहीं आराम करने के लिए कहकर वह उनके आगे-आगे हो लिया।

बाबा ऋषि की समाधि बाज़ार से ज़रा दूर थी। बीच में बाहर से आने वाले श्रद्धालुओं और ज़यारतगाह के ख़िदमतगारों के लिए कोठड़ियाँ बनी हुई थीं। उस वक्त भी वहाँ कोई कश्मीरी परिवार उतरा हुआ था। कोठड़ियों के बाहर खुले में देग चढ़ी थी और उसके इर्द-गिर्द कश्मीरी औरतों का झुंड बाबा ऋषि की स्तुति के गीत गा रहा था। हसनदीन उनके पास से निकलता हुआ खन्ना साहब को समाधि तक ले गया।

"इसकी छत शाह हमदान के मकबरे जैसी बनी है।" मकबरे

के बाहर क्षण भर को रुककर खन्ना साहब ने अपनी बीवी को समझाया।

मकबरे के छोटे-से दरवाज़े पर रंगीन पर्दा पड़ा था। उनके पहुँचते ही मुजाविर ने पर्दा हटा दिया। अन्दर बड़ा-सा चौकोर कमरा था, जिसके बीचो-बीच बाबा ऋषि की कब्र थी। हसनदीन ने अन्दर प्रवेश करते ही बाबा ऋषि के हुज़ूर में सिर झुकाया। खन्ना साहब, उनकी बीवी तथा बच्चे ने उसका अनुकरण किया। फिर हसनदीन के पीछे-पीछे उन्होंने परिक्रमा की। ज़ियारतगाह लकड़ी की बनी थी और उसकी दीवारों में हवा के लिए बड़ी ख़ूबसूरत झिलमिली जालियाँ बनी थीं। सहसा खन्ना साहब ने रुककर पूछा—

"हसनदीन, यह झिलमिली में तागे और बाल कैसे बँधे हैं!"

हसनदीन ने उन बँधे हुए तागों और बालों की लटों का महत्व उन्हें समझाया और बोला, "साब तुम भी मन्नत मानो, 'बाबा रिशी' ज़रूर-बर-ज़रूर पूरा करेगा।"

तब खन्ना साहब ने तागा और उनकी पत्नी ने बालों की लट झिलमिली में बाँधकर मन्नत मानी। खन्ना साहब ने चाहा कि उन्हें मिलिट्री का ठेका मिल जाय और खन्ना साहब की बीवी ने दूसरे बच्चे की कामना की। कुक्कू दस बरस का था और उसके बाद उसके दूसरा बच्चा न हुआ था।

मन्नत मानकर दोनों ने बाबा के हुज़ूर में सिर नवाया और परिक्रमा पूरी करके बाहर निकल आये।

मुजाविर आशाभरी निगाहों से उनकी ओर देख रहा था।

"साब यहाँ कुछ ख़ैरात करना चाहिए।" हसनदीन ने उन्हें सुझाया।

खन्ना साहब ने जेबें टटोलीं। फिर मुजाविर से बोले, "मेरी जेब में रेज़गारी नहीं, दस-दस के नोट हैं। हम बाबा ऋषि की ख़िदमत में फिर हाज़िर होंगे और अगर हमारे मन की मुराद पूरी हो गयी तो बाबा को ख़ूब ख़ुश कर देंगे।" (रिश्वत की इस भाषा के अतिरिक्त वे दूसरी भाषा नहीं जानते थे।)

मुजाविर ने हँसकर दुआ दी कि उनके मन की मुराद बर आये और वे फिर वहाँ तशरीफ़ लायें और खन्ना साहब और उनकी देखा-देखी उनके बीवी-बच्चे ने हाथ जोड़े और वे वापस फिरे।

खन्ना साहब ने अपनी पत्नी को अँग्रेज़ी में समझाया कि जब तक मुराद पूरी न हो जाय, वे ख़ैरात करने में विश्वास नहीं रखते और चलते-चलते वे आत्म-तोष से हँस दिये।

लेकिन हसनदीन को उनका बाबा ऋषि की समाधि पर कुछ भी ख़ैरात न करना अच्छा नहीं लगा। वह कहना चाहता था, 'साब, हम एक-दो रुपया दे दें!' पर साब बुरा न मान जाय, इस डर से वह चुप रहा। हाँ, उसने यह किया कि जेब से दो आने के पैसे निकाल बाबा की चौखट पर रखकर सजदा कर दिया और भागकर उनसे जा मिला।

बाज़ार के निकट पहुँचकर खन्ना साहब ने कहा, "हसनदीन, अब हम खाना खायँगे और कुछ आराम करेंगे, तुम भी चाय-वाय पी लो और आराम कर लो। दो घंटे बाद हम चलेंगे।"

और यह कहकर उन्होंने कैनवस का बैग उठाया।

हसनदीन ने बढ़कर बैग उनसे ले लिया।

खन्ना साहब आगे चलते हुए बोले, "झरना किधर है? हम वहीं चलेंगे, ताकि पानी की दिक़्क़त न हो।"

"पानी का फ़िकिर साब तुम मत करो। पानी हम लायेगा। तुम उधर घास पर बैठो।" फिर खन्ना साहब को तनिक रोक-कर उसने कहा, "साब हमको कुछ मिल जाता तो हम उन लोगों के चाय-पानी का इन्तज़ाम कर देता।"

खन्ना साहब ने बेपरवाही से जेब में हाथ डाला और एक दस का नोट निकाला, "मैं भूल गया रेज़गारी लेकर चलना। मेरे पास दस-दस के नोट हैं, इसीलिए बाबा ऋषि से उधार कर लिया।"

और वे हँसे।

नोट देखकर हसनदीन ने कहा, "साब एक रुपया मिल जाता तो हमारा काम चल जाता।"

खन्ना साहब फिर हँसे। "चलते वक्त मैं नोट तुड़वाना भूल गया।" फिर निमिषभर रुककर उन्होंने पूछा, "यहाँ कहीं नोट टूट जायगा?"

"साब दस का नोट यहाँ कौन तोड़ेगा।"

खन्ना साहब ने नाटकीय ढंग से नोट आगे बढ़ाया, "तुम यह ले लो। तुम्हारा तो काफ़ी पैसा हमें देना है।"

हसनदीन चाहता था कि कल खिलनमर्ग भी वे उसी के घोड़े पर जायँ। बोला, "नहीं साब रहने दो! हम अपने पास से ख़र्च कर लेता है। दस रुपया हम क्या करेगा?"

खन्ना साहब ने नोट तत्काल जेब में रख लिया और बड़ी बेपरवाही से बोले, "हाँ हाँ तुम अपने पास से ख़र्च कर लो। फिर हिसाब हो जायगा।"

"साब तुम चलो बैठो। हम उन लोगों को कुछ पैसा देकर दो मिनट में आता है।"

और हसनदीन भागा। उसने ममदे को आठ आने दिये और कहा कि साहब के पास तो दस का नोट है, अभी कुछ बख़शीश नहीं मिली। यह आठ आने लेकर वह कुछ खाने-पीने का सामान ले आये और वे दोनों चाय बनवाकर पियें, वह साब लोग को खाना खिलाकर आता है। और वह पलटा।

खन्ना साहब उसकी प्रतीक्षा में रुके थे, उनकी बीवी ज़रा अंतर पर रुकी उन दोनों का इन्तज़ार कर रही थी, लेकिन बच्चा भागकर उप्पल साहब के पास चला गया था।

खन्ना साहब अपनी बीवी के साथ इस तरह चले, जैसे उनका इरादा उप्पल साहब से तनिक फ़ासले पर अड्डा जमाने का हो ! तभी उनका बच्चा वहीं से आवाज़ देने लगा, "पापो जी इधर आइए।"

"इधर आओ, हम इधर बैठेंगे।" उन्होंने कृत्रिम क्रोध से पुकारा।

बच्चा वहीं मचलने लगा। तब उप्पल साहब ने आवाज़ दी, "इधर आ जाइए साहब।"

खन्ना साहब जैसे अनिच्छापूर्वक चले। उप्पल साहब, उनकी भतीजी और वह युवक जैम इत्यादि के डिब्बे खोले खाना खा

रहे थे। खन्ना साहब का लड़का निःसंकोच उनके साथ सेंडविच उड़ा रहा था।

"आइए साहब, नोश फ़रमाइए!"

"हम तो पराँठे लाये हैं।"

पराँठे भी खाइए और ये भी लीजिए। हमारा तो पेट ही ठीक नहीं रहता, नहीं, पराँठे कभी मेरी कमज़ोरी रहे हैं। ऊषा आपका साथ देगी।"

और यह कहते हुए उन्होंने बड़े इत्मीनान से एक सेंडविच को जैम लगाकर उसे दाँतों में रखा।

खन्ना साहब ने हसनदीन से बैग लेकर, उसमें से पराँठों का डिब्बा निकाला और एक-एक उन्होंने सबके आगे रखा। उप्पल साहब तो पहले ही अपने आमाशय की शिकायत कर चुके थे, उनकी भतीजी ने बासी पराँठा देखकर ऐसा मुँह बनाया कि उप्पल साहब को आँख से उसे शिष्टता बनाये रखने का संकेत करना पड़ा। उसी संकेत के कारण उस अफ़रीकी युवक ने पराँठे का एक टुकड़ा तोड़कर मुँह में रख लिया और उसकी प्रशंसा भी की।

"ज़रा दही अथवा शलजम के अचार के साथ खाइए!" खन्ना साहब प्रसन्न होकर बोले, "ज़रा ठंडे हो गये हैं। गर्म-गर्म तवे से उतरें तो अँगुलियाँ तक चाट जाने को जी चाहता है।" और पराँठों की तारीफ़ करते और ऊषा और उस अफ़रीकी युवक को एक-दो ग्रास और खाने का अनुरोध करते हुए वे बड़े निःसंकोच भाव से सेंडविचों पर हाथ साफ़ करने लगे।

हसनदीन काफ़ी देर से किंचित फ़ासिले पर चुपचाप खड़ा यह सब देख रहा था। पराँठों का डिब्बा ख़ाली करके खन्ना साहब ने उसे दिया कि उसे मिट्टी से माँज-धोकर भर लाये।

श्रीमती खन्ना ने कहा कि वे भर लायेंगी। लेकिन खन्ना साहब ने कहा, "नहीं वह भर लायेगा, तुम बैठो।" हसनदीन पानी भर लाया तो बच्चे ने उससे डिब्बा छीन लिया। श्रीमती खन्ना झरना देखने के बहाने उठ गयीं और उन्होंने वहाँ झरने पर जाकर पहले पानी पिया, फिर कुल्ला करके मुँह-हाथ धोया।

जब कुक्कू पानी पी चुका तो खन्ना साहब ने एक ही साँस में डिब्बा ख़ाली कर दिया। पानी ठंडा था, पर वे ज़्यादा खा गये थे और उन्हें बड़ी प्यास लग आयी थी। एकदम तृप्त होकर उन्होंने ज़ोर की डकार ली और अधलेटे हो गये। तब उन्होंने प्रोफ़ेसर साहब से पूछा कि वे बाबा ऋषि की समाधि देखने क्यों नहीं गये और उन्होंने हसनदीन से सुने बाबा ऋषि के चमत्कारों की बात सुनायी।

"हमें इन ऋषियों-विषियों में कोई विश्वास नहीं," उप्पल साहब बोले, "ऊषा देखना चाहती थी, फिर जीवानन्द भी (उन्होंने अफ़रीकी युवक की ओर संकेत किया) यह जगह देखना चाहता था, सो हम चले आये। भूख लग आयी थी, इसलिए सोचा पहले पेट-पूजा कर लें, फिर ऋषि-पूजा करेंगे।"

इस पर खन्ना साहब ज़ोर से हँसे, लेकिन हसनदीन ने कानों पर अँगुलियाँ रख लीं कि उसे 'बाबा रिशी' की निन्दा न सुननी पड़े।

"कहिए, कल का क्या प्रोग्राम है ?" सहसा खन्ना साहब ने पूछा। हसनदीन चौकन्ना हो गया।

"ऊषा तो कह रही है कल खिलनमर्ग चलने को, पर हमारा तो इरादा आराम करने का है।"

"हम स्वयं कल खिलनमर्ग जाना चाहते हैं। आप लोग साथ चलें तो अलपत्थर की फ़रोज़न लेक भी देख आयें।"

"अंकल आप ज़रूर चलिए।" और खन्ना साहब का बच्चा उनके गले से झूल गया।

बच्चा इतना प्यारा था कि उप्पल साहब ने उसे सीने से लगा लिया।

"चलिए न अंकल। आप थक जायँगे तो दो नाले पर बैठ जाइएगा, हम लोग झील देख आयेंगे।" ऊषा ने कहा।

"नहीं अंकल मैं आपको अपने साथ ले जाऊँगा, आप चढ़ाई पर मेरी बाँह पकड़ लीजिएगा।" बच्चे ने उनकी गर्दन से झूलते हुए कहा।

"अच्छा बेटा चलेंगे।" और उन्होंने उसे चूम लिया।

'ख़ुदा बड़ा कारसाज़ है!' हसनदीन ने मन-ही-मन ख़ुदा के हुज़ूर में सजदा किया, 'उसने मेरी दुआ कबूल की तो उसे पूरा करने का ज़रिया इस बच्चे को बना दिया।'

खाना खा चुकने के बाद उप्पल साहब तो वहीं लेट गये, ऊषा और जीवानन्द से उन्होंने कहा कि वे जल्दी बाबा ऋषि की समाधि देख आयें।

तब हसनदीन ने अपने-आप को पेश किया कि वह उन्हें दिखा लाता है और खन्ना साहब से बोला, "साब अभी खाना खाया है, तुम कुछ देर आराम कर लो। हम इधर इनको 'बाबा रिशी' के दर्शन करा देता है और ज़रा चाय भी पी आता है।"

खन्ना साहब स्वयं कुछ ज़्यादा खा गये थे। वे भी दरी की एक ओर अधलेटे हो गये, उनकी पत्नी बच्चे को दुकान से वही टोपी लेकर देने चल दीं और हसनदीन बड़े उत्साह से ऊषा और जीवानन्द को ले चला।

मन उसका उत्फुल्ल था। बाबा ऋषि के लिए एक असीम श्रद्धा से भरा हुआ था। ख़ुदा और बाबा ऋषि में वह कोई अंतर न देख पाता था। बाबा ऋषि पहुँचे हुए फ़कीर थे और जन-साधारण की भाषा में पहुँचे हुए का मतलब ख़ुदा को पहुँचे हुए से है और इसीलिए हसनदीन की दृष्टि में बाबा पामदीन और ख़ुदा कोई दो नहीं थे। वह गुलमर्ग की सैर करने के लिए आने वालों को बाबा ऋषि के दर्शन कराना एक कारे-सवाब—पुण्य का काम—समझता था। क्या 'बाबा रिशी' नहीं जानते कि वह पैसा इसीलिए न इकट्ठा करना चाहता है कि वह उनकी मन्नत पूरी करे, इसीलिए तो वे उसकी मदद ख़ुद कर रहे हैं।' उसने सोचा और वह दूने उत्साह से ऊषा और जीवानन्द को बाबा ऋषि के कारनामे सुनाने लगा। उसने न केवल उनको समाधि की परिक्रमा करायी, बल्कि वहाँ रखे बड़े-बड़े देगों के बारे में बताया कि कैसे उत्सव के दिनों में ये चढ़ाये जाते हैं और क़ुर्बानी के कई-कई दुम्बे इनमें पकते हैं। उसने उन्हें बाबा ऋषि के स्मृति-चिन्ह

दिखाये और उनसे कहा कि वे खिड़की की भिलमिली में तागा बाँधकर कोई मन्नत मानें।

जीवानन्द लम्बा छरहरा, हल्के साँवले, किन्तु तीखे नाक-नक्शे वाला युवक था। वह हसनदीन की बातें चुपचाप सुनता आया था, उसने बाबा ऋषि, उनके जीवन, उनके कृतित्व अथवा उनकी समाधि अथवा मुजाविरों के सम्बन्ध में एक भी प्रश्न न किया था, यद्यपि ऊषा लगातार चहकती चली आयी थी और हसनदीन बड़े उत्साह से बाबा ऋषि के दर्शनों का माहात्म्य सुनाता और हर प्रश्न का उत्तर देता आया था। जब हसनदीन ने झिलमिली से तागा बाँधकर मन्नत मानने के लिए कहा तो जीवानन्द मौन रूप से इस तरह शून्य में तकता रहा जैसे यह बात उससे नहीं कही गयी, किसी और से कही गयी है।

ऊषा ने एक बार शंकर-सा ध्यान लगाये उस युवक को देखा। उसकी आँखें अनायास चमक उठीं, ओठ पहले मुस्कराये फिर लजा गये और उसका मुख अपने-आप लाल हो गया।

"मैं मन्नत मानूँगी," उसने अचानक सिर उठाकर जीवानन्द की ओर देखते हुए कहा।

लेकिन जीवानन्द झिलमिली के पार, बहुत दूर, जैसे अफ़रीका के अथाह अनजाने जंगलों की गहराइयों में खो गया था।

ऊषा चंचल हो उठी। वह मँझले क़द की युवती थी। मोटी तो नहीं थी, पर उसका झुकाव मोटापे की ओर को ज़रूर था। पहली दृष्टि में वह एक-आध बच्चे की माँ, घरेलू स्त्री लगती थी और हसनदीन ने भी उसे उप्पल साहब की बीवी समझा था, लेकिन

बाद में उसे मालूम हुआ था कि वह उनकी भतीजी है और दो एक वर्ष पहले उसने बी०ए० पास किया है। वह अपने-आपको २१-२२ वर्ष की बताती थी, लेकिन देखने में ३१-३२ की लगती थी। उसका कारण शायद मोटापे की ओर को उसका झुकाव अथवा बनाव-सिंगार में ग्रेज्युएट होने के बावजूद हल्का-सा फूहड़पन अथवा यों कहा जाय कि आधुनिकता का अभाव था। लेकिन उस क्षण उसके फूले-फूले गालों और अधमुंदी आँखों में कुछ ऐसी मादकता आ गयी थी जैसे कोई उदास, अँधेरा कमरा किसी अनजाने झरोखे में से आने वाली धूप की एक तेज़ किरण से चमक उठे। अचानक वह हसनदीन से बोली, "यहाँ बाँधने को तागा कहाँ से लाऊँ।"

हसनदीन के ओठों पर आया, कहे, 'चोटी के पराँदे में से ले लीजिए।' क्योंकि वे लोग तो स्वयं ऐसे ही करते थे। फटे दुपट्टे की छीर, पराँदे अथवा तावीज़ की डोरी का कोई तागा यहाँ बाँधकर वे लोग अपनी मन्नत मान लेते थे। लेकिन यह सब साहब लोग, जाने बुरा मान जायँ। दूसरे क्षण उसने अपनी जीभ काट ली और भागा-भागा मुजाविर के पास गया और एक सूत का तार ले आया।

ऊषा ने तागा उससे लेकर तड़ित-सी एक दृष्टि शंकर-से ध्यानस्थ उस जीवानन्द पर डाल, तागा बाँध दिया और मन्नत मानी— उसकी आँखें क्षण भर को बन्द हो गयीं। आकृति का सारा चांचल्य दूर हो गया। एक अपूर्व शान्ति और स्निग्धता, एक अजीब-सी मधुरता और मदिरता धूप से तपी हुई धरती पर अजाने

ही उतर आने वाली मीठी साँझ की तरह उसकी आकृति पर छा गयी। हल्के-हल्के बेआवाज़ उसके ओठ हिलते रहे और सहसा उसने आँखें खोलकर उस साँवले, लम्बे, छरहरे, मौन युवक की ओर देखा। युवक की निगाहें दूर अफ़रीका के घने अँधेरे जंगलों से पलट आयीं। दोनों की निगाहें मिलीं। ऊषा के मुख पर एक अपूर्व मिठास आ गयी और युवक का रंग कुछ और श्याम हो गया और दोनों चल पड़े।

लेकिन हसनदीन ने यह सब नहीं देखा। आँखें बन्द किये वह 'बाबा रिशी' का शुक्रिया अदा करता रहा कि उसने अपने उस नाचीज़ बन्दे की सुन ली और उसे ऐसी अच्छी सवारियाँ दीं और बापम ऋषि से उसने वादा किया कि ज्यों ही उसके पास पैसे हुए, वह अपनी अम्मा की मन्नत के मुताबिक ईदू का निकाह करने उनके हुज़ूर में आयेगा और उसने ऊषा के लिए भी दुआ की कि बाबा उसके मन की मुराद पूरी करे। वे लोग फिर गुलमर्ग आयें और वही उनको बापम ऋषि के हुज़ूर में मन्नत पूरी कराने लाये।

जब उसने आँखें खोलीं तो जीवानन्द और ऊषा चल चुके थे। दरवाज़े पर जब ऊषा ने हाथ जोड़े तो हसनदीन ने कहा, "हुज़ूर कुछ ग़रीबों के लिए ख़ैरात को दीजिए।"

ऊषा ने बेबसी से हाथ मले। बटुआ वह अपने चाचा के पास ही छोड़ आयी थी, लेकिन बिना पलक झपकाये अथवा चेहरे पर किसी तरह का भाव लाये जीवानन्द ने जेब से रुपये-रुपये के कुछ नोट निकालकर बाबा पामदीन के मज़ार पर चढ़ा दिये।

हसनदीन को लगा जैसे ख़ुद उसने रुपये चढ़ाये हों। जैसे खन्ना साहब के कुछ भी ख़ैरात न करने से जो गुनाह हुआ था, वह धुल गया हो। जब जीवानन्द रुपये चढ़ा रहा था तो वह सजदे में झुका हुआ था।

समाधि से बाहर आकर उन्होंने हसनदीन से कहा कि वह चाय-वाय पिये। उसके साहब इन्तज़ार कर रहे होंगे। और जीवानन्द ने एक रुपये का नोट उसकी ओर बढ़ाया।

"नहीं साब, इस कारे-सवाब का हम पैसा नहीं लेगा। आप हमारे घोड़े पर चलेगा, हम ख़िदमत करेगा तो माँगकर बख़्शीश लेगा।"

जब बहुत कहने पर भी उसने रुपया नहीं लिया तो जीवानन्द ने उसे वापस जेब में डाल लिया और दोनों समाधि के पीछे को निकल गये।

हल्के-से नशे में सरशार हसनदीन बाज़ार को लौटा। वहाँ उसने स्च्येरू के साथ हरी नमकीन चाय पी और फिर उसने खन्ना साहब से कहा कि वे चलें नहीं तो देर हो जायेगी।

वे जिस रास्ते से नीचे गये थे उधर से वह उन्हें नहीं लाया। ज़रा-सा चक्कर देकर सरकुलर रोड के एक हिस्से से, उधर के पहाड़ों के दर्शन कराता हुआ वह उन्हें बिलकुल गुलमर्ग होटल के पास ले आया। एकदम वहीं, जहाँ वे टंगमर्ग से आते समय उतरे थे। सरकुलर रोड से घोड़े जब नीचे को हुए तो सहसा बच्चा चिल्ला उठा, "पापो जी हम तो अपने होटल पहुँच गये।"

होटल के बाहर ही खन्ना साहब और उनका परिवार घोड़ों

से उतर गया। खन्ना साहब ने बैग हसनदीन से ले लिया और "कितने हुए तुम्हारे पैसे ?" कहते हुए जेब से बटुआ निकाला।

लेकिन हसनदीन ने न पैसे बताये, न लिये। "लेकिन साब तुम तो कल खिलनमर्ग और अलपत्थर जाने वाला है ? हम तुमको कल अलपत्थर दिखाकर लायेगा, फिर पैसा लेगा।" वह बोला।

"हम खिलनमर्ग तो ज़रूर जायँगे।" खन्ना साहब बोले, "अलपत्थर का हम नहीं कह सकते। हमारी सीटें बुक्ड हैं, टिकट हम ले आये हैं। कहीं ऐसा न हो कि हम बस से रह जायँ और आठ-दस रुपये की डज़ और पड़ जाय।"

"कुछ फ़िकिर नहीं साब, तुम सुबह चलेगा तो हम तुमको अलपत्थर और 'फ़िरोज़न लेक' दिखाकर टाइम से बस पर पहुँचा देगा।"

"कितना बजे चलना होगा ?"

सुबह सात बजे यहाँ से निकल चलें तो ग्यारह बजे अफ़राबट पहुँच सकता है। तुम इस वक्त जल्दी सो जाओ और सुबह छः बजे उठकर तैयार हो जाओ।"

"तुम सुबह कितने बजे आओगे ?"

"हम साढ़े छः बजे यहाँ पहुँच जायगा।"

"लेकिन हमारे पास अलारम-वलारम तो है नहीं, हमें जगायेगा कौन ? तुम ऐसे करो सुबह छै बजे आ जाओ, हमें भी जगाओ और हमारा नाश्ता भी तैयार कराओ, आर्डर हम अभी दे देंगे। जितने में तुम नाश्ता बनवाओगे, हम हाथ-मुँह धो, कपड़े बदलकर तैयार हो जायेंगे।"

"कुछ फ़िकिर नहीं साब, हम सुबह छः बजे यहाँ आयेगा, तुम सब को भी जगायेगा और बैरे से नाश्ता भी तैयार करायेगा। आर्डर तुम अभी दे दो।"

"हमको तो दस-बारह पराँठे चाहिएँ और कोई आलू-वालू की सूखी सब्ज़ी। अचार हमारे पास काफ़ी है।"

"साब, कुछ आमलेट-वामलेट बनवा लो। ऊपर सर्दी है, बदन गर्म रहेगा।"

"अण्डे-वण्डे हम नहीं खाते।"

"कुछ फ़िकिर नहीं साब, हम अभी जाकर बैरे को बोलता है कि तीन नम्बर वाले साब के लिए बारह पराँठे और आलू-गोभी की सूखी तरकारी बना दे। सुबह तुम बेड-टी तो लेगा ?"

खन्ना साहब ने ज़ोर का ठहाका लगाया, "ये बेड-टी वग़ैरा अँग्रेज़ों की नकल करने वाले लेते हैं, हम तो सुबह उठकर ठंडे पानी का गिलास पीते हैं। हमें बेड-टी की आदत नहीं।"

और हसनदीन अन्दर की तरफ़ बढ़ा। तब खन्ना साहब चिल्लाये, "देखो बैरे से कहना अभी पराँठे बनाकर न रख दे। सुबह उठकर हमको ताज़ा पराँठे बना दे !"

वहीं से मुड़कर और कम्बल को गले में लपेटते हुए हसनदीन ने कहा, "कुछ फ़िकिर नहीं साब, हम उसको यही बोलेगा।"

यद्यपि छः से ज़्यादा का समय नहीं था, लेकिन शाम गुलमर्ग के मैदान पर पूरी तरह उतर आयी थी। सामने बाज़ार की दुकानों की अकेली पंक्ति धुँधली-सी पड़ गयी थी। एक-दो बत्तियाँ भी जल आयी थीं, ठंड बढ़ गयी थी और बायीं ओर अफ़राबट की

चोटी पर बर्फ़ की धारियाँ आभाहीन हो गयी थीं। खन्ना साहब की बीवी उनके हाथ से बैग लेकर अन्दर जाने लगी तो उन्होंने कहा, "चलो ज़रा बाज़ार तक हो आयें।"

"उसे आप बाज़ार कहते हैं! सब दुकानें बन्द पड़ी हैं। ईदू कहता था कि एक सिक्ख का ढाबा खुला है और सरकारी इम्पोरियम है। क्या देखेंगे वहाँ?"

"तो भी चलो ज़रा घूम ही आयें।"

"घूमने से आपकी तबीयत नहीं भरी। यहाँ तो पोर-पोर दर्द कर रहा है।"

हसनदीन बैरे को आर्डर देकर आ गया था। उसने कहा, "साब इस वक्त तुम आराम करो। सुबह जाते वक्त हम आपको बाज़ार की तरफ़ से ले चलेगा। छः बज चुका है, इम्पोरियम तो बन्द हो गया होगा।"

और उसने साहब और मेम साहब दोनों को सलाम बोला।

"हमको भी सलाम बोलो, हम बड़ा साब है।" सहसा बच्चा बोला।

हसनदीन हँसा। और भी झुकते हुए उसने कहा, "बड़े साब सलाम!" और मुड़कर कम्बल को लपेटता हुआ वह घोड़ों के पास पहुँचा। ममदू और ईदू वहीं रास्ते के एक ओर बैठे बीड़ी पी रहे थे। हसनदीन ने सिर का इशारा किया। दोनों उठे। घोड़े की लगाम थाम और रकाब में पैर रख, एक ही झटके से चढ़ते हुए हसनदीन ने जोश और ख़ुशी से पुकारा—"यौ पीर! . . . ."

"....दस्तगीर!" ईदू और ममदा दोनों घोड़ों पर चढ़ते हुए चिल्लाये।

और घोड़े टंगमर्ग की ओर उड़ चले।

सुबह अभी पूरब का अहेरी पहाड़ों के पीछे से जागने का प्रयास ही कर रहा था, जब हसनदीन अपने बेटे और ममदू के साथ घोड़े दौड़ाता हुआ गुलमर्ग पहुँचा।......

रात उसने घर पहुँचते ही पहले घोड़ों को दाना खिलाया था, फिर उनकी दोनों पिछली टाँगें ऐसे बाँधकर कि वे चल सकें, लेकिन भाग न सकें, उसने उन्हें गाँव के बाहर पहाड़ की ढाल पर चरने को छोड़ दिया था।

परेज़पुर यद्यपि अपेक्षाकृत समतल जगह पर बसा था, पर ढलानों पर ख़ूब घास थी। घोड़े घास चरते-चरते पिछली दोनों टाँगों को एक साथ उठाकर फुदकते काफ़ी दूर निकल जाते थे, लेकिन नूर के तड़के उठकर किसान उन्हें पकड़ लाते थे। हसनदीन के घोड़े सुबह से सवारी पर थे, वह उन्हें उस जगह से ले गया, जहाँ ढलवान पर घास का एक खेत-ऐसा समतल भू-खंड था। घोड़े वहाँ पहुँचते ही लोटनियाँ लगाने लगे। चारों पैर आसमान की ओर करके लोटनी लगाते, उचककर उठते और फिर उसी तरह लोटने लगते।

हसनदीन कुछ क्षण तक उन्हें लोटनियाँ लगाते देखता रहा था। वह जब भी उन्हें लोटनियाँ लगाते देखता था, उसे वह

कहावत याद आ जाती थी जो उसने एक पैसेंजर से सुनी थी :—

पान क्यों सड़ा ?
मुर्चा क्यों पड़ा ?
घोड़ा क्यों अड़ा ?

और उत्तर भी उसके मस्तिष्क में कौंध जाता।

फेरा न था !

यह अजीब बात है कि आदमी थक जाता है तो सोना चाहता है और घोड़ा थक जाता है तो लोटनियाँ लगाता है। और उसे ख़याल आया कि यदि उसे दौलत मिल जाय तो वह अपने घोड़ों के लिए एक ऐसा आदमी रखे जो उनके पुट्ठों को दिन की थकान के बाद ख़ूब ज़ोर-ज़ोर से मले और उनकी सेवा करे। उसने बहुत साल पहले एक अँग्रेज़ के बंगले में साईस को घोड़े की ख़िदमत करते देखा था और उसके मस्तिष्क में वह दृश्य सदा के लिए अंकित हो गया था।

वह वापस मुड़ा। अँग्रेज़ के उस अस्तबल की याद आते ही अमीर होने के सम्बन्ध में उसका दिवा-स्वप्न फिर उसकी आँखों के आगे आ गया। इस बार उसे पुलिस ने नहीं पकड़ा और वह एक लाख रुपये का वितरण करता हुआ वापस फिरा—उसकी पहली आवश्यकता कपड़े और रोटी थी। उसने न केवल अपने बीवी-बच्चे, बल्कि अपने भाई के बीवी-बच्चों के लिए भी बढ़िया कपड़े सिलवाये। उसके भंडार हर प्रकार के अन्न से भर गये। फिर गाँव के बाहर उसने बड़ा मकान बनवाया, फिर उसने बड़ी शान-

शौकत से बाबा ऋषि की मन्नत मानी और ईदू का निकाह अपने बड़े भाई की बेटी से किया। फिर उसने घोड़ों का बड़ा अस्तबल बनवाया—उसके घोड़े श्रीनगर, पहलगाम और गुलमर्ग में चलने लगे। उसने कल्पना-ही-कल्पना में देखा कि दिन भर सवारी करके घोड़े वापस आते हैं तो उन्हें बढ़िया दाना मिलता है और साईस लोग उनके पुट्ठों को बड़े ज़ोर से कपड़ों के गद्दों से सहलाते हैं—जैसे वर्षों पहले उसने उस अँग्रेज़ के अस्तबल में देखा था—पैसा उसके पास खिंचा चला आ रहा है और उसने एक और शादी कर ली है और टंगमर्ग में बंगला बनवाया है......

लेकिन तभी उसके कानों में यासमन की आवाज़ पड़ी। वह ममदे से कह रही कि वह जाये, देखे कि ईदू का अब्बा रहमान की दुकान पर तो नहीं रह गया, सुबह नूर के तड़के उठकर जाना होगा। वक्त से खाना खाये और सोये......

और हसनदीन ने ख़ुदा का शुक्र अदा किया था कि उसके पास दौलत नहीं और वह गुनाह की ज़िन्दगी से बचा हुआ है और उसे ताज्जुब हुआ कि वह अपनी उस मेहनतकश, वफ़ादार बीवी का ख़याल कैसे छोड़ बैठा, लेकिन ख़ुदा का शुक्र अदा करने और सिर को झटका देकर उस दिवा-स्वप्न को भगाने के बावजूद अपने घरौंदे की अनगढ़ सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते उसने फिर सोचा कि उसके पास यदि दौलत आयी तो वह अपनी उस वफ़ादार बीवी को गहनों-कपड़ों से लाद देगा।

खाना खाते हुए उसने सोल्लास अपनी बीवी को बताया था कि आज सुबह उसने सच्चे दिल से ख़ुदा के हज़ूर में जो दुआ की

थी, वह लगता है कि उसने सुन ली है, उसे बड़ी अच्छी सवारियाँ मिली हैं, उसे यह भी पता चला है कि इस महीने सुबह हरनामसिंह ही की डिचुटी रहेगी और उसे पूरा यक़ीन है कि वह इतना कमा लेगा कि खाने कपड़े के लिए निकालकर 'बाबा रिशी' की मन्नत पूरी कर सके।

खाना खाकर वह ऊपर अपनी अम्मा और बड़े भाई को भी अपने मन की बात सुना आया था और जब वह सोया था तो यासमन उसके पास आ गयी थी और दोनों देर तक ईदू के निकाह और 'बाबा रिशी' की ज़याफ़त के ब्योरों में उलझे रहे थे।

......गहरी तश्तरी सरीखा गुलमर्ग अभी नींद के ख़ुमार में सोया हुआ था। धानी घास की मख़मल सुबह के झुटपुटे में मूँगी के रंग की गहरी हरी दिखायी दे रही थी। मर्ग का नाला घास के उस मैदान में अजगर-सा सोया पड़ा था। पगडंडियाँ घास में सोयी-खोयी-सी बेहोश थीं। सामने ख़ालसा होटल और परे दायीं ओर बाज़ार की एक जैसी दुकानों की कतार स्तब्ध सन्नाटे में मौन थी और बायीं ओर अफ़राबट के नीचे दोनाले की दूधिया नहरें उन तन्वियों-सी मौन, उदास लेटी थीं, जिनकी स्वप्निल खुली आँखों में प्यार की निगाहों ने अभी न झाँका हो।

लेकिन हसनदीन की निगाहों ने वह सौन्दर्य देखकर भी नहीं देखा। रिज पर से घोड़ा दौड़ाता वह ढलान पर जाकर रुका। गुलमर्ग होटल के गेट पर वे घोड़ों से उतरे। हसनदीन ने अपने घोड़े की लगाम ईदू को दी और कम्बल के लटकते सिरे को दूसरे

कन्धे पर डालता हुआ वह गेट के अन्दर गया। जाकर उसने बैरे को जगाया कि वह उठकर साब लोगों के लिए नाश्ता और लंच का सामान तैयार करे।

विज़िटर चूँकि ज़्यादा नहीं आते थे, इसलिए होटल के मालिक ने एक बैरा और एक कुक होटल के लिए रख छोड़ा था। बैरा ही होटल का मैनेजर भी था। विज़िटरों से किराया तय करना, बिल बनाना, पैसे लेना—सब काम वही करता था। जाने वह पेशे से बैरा था या होटल के मालिक का ही कोई रिश्तेदार अथवा विश्वस्त आदमी था।

"तीन नम्बर वाले साब को आज ही अलपत्थर देखकर टंगमर्ग से बस पकड़ना है," हसनदीन ने बैरे को समझाया, "और एक नम्बर वाले को बेड-टी नहीं मिलेगा तो वो उठेगा नहीं। उसका लड़की को 'फ़िरोज़न लेक' जाना है।"

यद्यपि यह बात बैरे को पिछली शाम ही समझा दी गयी थी तो भी हसनदीन ने इस पर ज़ोर देना अनावश्यक नहीं समझा। उसने दोनों साहबों से पिछली शाम वादा किया था कि वह सुबह सब चीज़ उन्हें वक्त से बनवा देगा।

जब बावर्ची भी जग गया और उप्पल साहब के लिए चाय तैयार हो गयी तो इधर बैरा उनके कमरे में चाय ले गया, उधर हसनदीन ने खन्ना साहब को जगा दिया कि वे नित्य-कर्म से निबट-कर नाश्ते के लिए तैयार हो जायँ, इतने में वह नाश्ता भिजवाता है।

और वापस जाकर उसने किचन में बैरे से कहा कि वह स्वयं

कुक की मदद करता है, वह सेंडविच वग़ैरा तैयार करे। एक घंटे के अन्दर-अन्दर उसने सब कुछ तैयार करा दिया।

लेकिन साहब लोग अभी तैयार न हुए थे। उनको जल्दी तैयार होने के लिए कहकर और इस बात का डर दिखाकर कि 'वो लोग जल्दी नहीं चलेगा तो खिलनमर्ग से जेहलम और वुलर का बढ़िया व्यू नहीं मिलेगा', वह बीड़ी का कश लगाने के लिए बाहर आ गया।

उप्पल साहब के घोड़े वाले भी आ गये थे। और ईदू और ममदे के साथ ही होटल की दीवार के साथ पीठ लगाकर बैठे थे। हसनदीन भी उन्हीं के साथ जा बैठा। अपने फ़िरन की गहरी जेब से उसने बीड़ी निकाली और उसे सुलगाकर चुपचाप कश लगाने लगा।

धूप निकल आयी थी और उसकी सुनहरी किरणें उस विशाल मैदान पर जहाँ-जहाँ पड़ी थीं, धानी चकत्ते पड़ गये थे। सुबह की कुन्दनी धूप ने मर्ग को अजीब सुन्दरता प्रदान कर दी थी। अफ़राबट की तन्वियों ने यद्यपि अभी तक अरुण के प्यार की निगाहों का परस नहीं पाया था, किन्तु उनकी उदासी दूर हो गयी थी और कुछ अजीब-सी सजग, सतर्क उत्सुकता उनमें भर गयी थी। आठ बजने वाले होंगे जब हसनदीन को आवाज़ पड़ी।

हसनदीन उछलकर उठा। सेठ तैयार हो गये थे। भागता और अपने कम्बल को कन्धे पर डालता हुआ वह अन्दर गया।

उप्पल साहब भी तैयार थे। हसनदीन ने उनके घोड़वानों को भी आवाज़ दी।

"लो भाई उठाओ सामान और चल दो।" खन्ना साहब ने कहा।

वही कल वाला कैनवस का थैला था। दो बरसातियाँ और एक छाता और दो छड़ियाँ थीं जो हसनदीन ही के कहने पर उन्होंने साथ ले ली थीं।

"साब लंच सम्हाल लिया?" उसने सावधानी के रूप में पूछा।

"हाँ पराँठे बनवा लिये हैं बारह। आलू और गोभी की तरकारी है और अचार तो वधावा सिंह का है, जिसके शलजम के अचार की सारे हिन्दुस्तान में धूम है।"

हसनदीन ने कैनवस का बैग कम्बल में बाँधकर कमर में लटका लिया। छाता और बरसातियाँ ममदे को दीं, एक छड़ी ईंदू को दी और एक स्वयं हाथ में ली और सवारियों को घोड़े पर सवार कराया।

"किधर को चले?" सहसा उप्पल साहब ने पूछा, "रास्ता तो इधर से जाता है।"

"तुम इधर से चलो साब।" हसनदीन बोला, "हम साब को बाज़ार से घुमाकर लाता है।"

"भाई पानी तो ऊपर मिल जायगा?" सहसा खन्ना साहब ने पूछा।

"साब पानी तो होगा, लेकिन बर्फ़ का, फिर पानी ऊपर

अफ़राबट पर ही मिलेगा ।"

"प्यास लगे तो?"

"प्यास तो चढ़ाई में साब ख़ूब लगता है" .... फिर कुछ क्षण रुककर उसने कहा, "साब, तुम एक लैमन स्कुआश का बोतल साथ रख लो। अँग्रेज़ लोग जब ऊपर जाता था, लैमन स्कुआश का बोतल साथ रखता था। बर्फ़ का पानी पीने से गला ख़राब हो जाता है।"

"अरे वो अँग्रेज़ों के नाज़ुक गले होंगे जो ख़राब होते होंगे," खन्ना साहब ने ठहाका लगाया। "बाज़ार से कुछ लैमन ड्राप ले लेंगे, प्यास लगने पर चूस लेंगे।"

"कुछ फ़िकिर नहीं साब, जितना बोलेगा, ले लेगा।"

खन्ना साहब हँसे, "अरे जितना क्या, हमें कोई दुकान खोलनी है। चार आने का ले लेना।"

"चार आने का क्या करना है? पड़ा जेबों में चिप-चिप करेगा। दो आने का काफ़ी होगा।" श्रीमती खन्ना बोलीं।

बाज़ार में बनिये की एक छोटी-सी दुकान थी, जिसमें आटा, चावल, दाल, घी भी था; सब्ज़ी-तरकारी भी और जनरल मर्चेण्डाइज़ की छोटी-मोटी ज़रूरत की चीज़ें भी। खन्ना साहब ने घोड़े पर चढ़े-चढ़े एक रुपये का नोट हसनदीन को दिया। "चार आने...दो आने के लैमन ड्राप ले लो।" वे बोले।

हसनदीन ने बनिये से दो आने के लैमन ड्राप माँगे।

बनिये ने चौदह आने की रेज़गारी और एक अदद लैमन ड्राप उसकी हथेली पर रख दिया

खन्ना साहब वहीं घोड़े पर बैठे हुए बड़े ही झल्लाये हुए स्वर में चिल्लाये, "यह क्या, दो आने का एक लैमन ड्राप ! वहाँ तो पैसे-पैसे मिलता है।"

बनिया कश्मीरी था, शायद वह जाति से बनिया था भी नहीं, पण्डित था और दुर्दिन ने उसे बनिया बना दिया था। मैला-सा फ़िरन उसने पहन रखा था और सिर पर उसके पगड़ी थी; चेहरे पर उसके झुर्रियाँ थीं और कमर झुक गयी थी। लेकिन उसके रंग का गोरापन और उसकी तीखी नाक उसके कश्मीरी ब्राह्मण होने की चुगली खाती थी।

खन्ना साहब की बात सुनकर वह हँसा। "साहब यहाँ मिल तो जाता है, इस बात को आप बहुत नहीं समझता। जहाँ यह पैसे-पैसे में मिलता है, वहाँ से यह जगह कितना दूर है, इस बात को आप नहीं सोचता।"

खन्ना साहब हतप्रभ हो गये, पर अपनी खिन्नता को एक खोखले ठहाके में छिपाते हुए और 'भाई ख़ूब बात कही है तुमने,' से बनिये को दाद देते हुए उन्होंने बड़े ही दरियादिली के ढंग से कहा, "अच्छा एक छटाँक दे दो।"

जब बनिया एक बड़े से तरकारी तोलने वाले तराज़ू में, जिसमें एक छटाँक का पासंग ही हो सकता था लैमन ड्राप तोलने लगा तो हसनदीन की निगाहें लैमन स्कुआश की बोतलों पर जम गयीं—'कैसे-कैसे विज़िटर आने लगे हैं !' उसने मन-ही-मन कहा, बनिये से लैमन ड्राप की पुड़िया लेकर खन्ना साहब को दी और घोड़े की लगाम थामकर चल पड़ा।

पीली-पीली, धूप से चमकती हुई धानी घास का मैदान पार करते हुए वे 'नीडोज़ होटल' के पास से गुज़रे। "इस नीडो होटल को कबाइलियों ने नहीं लूटा ?" सहसा खन्ना साहब ने पूछा।

"लूटा क्यों नहीं साब। एक-एक चीज़ ले गया। दरियाँ, ग़लीचे तक ढोकर ले गया। बिजली की फ़िटिन (Fitting) को सोने का समझकर ले गया।" और हसनदीन उनकी मूर्खता पर हँसा, "पीतल की चमकती चीज़ को वो लोग सोने का समझता था।"

"विज़िटर नहीं थे ?"

"सर्दी का मौसम था साब, सीज़न ख़त्म हो गया था, बंगला और बाज़ार सब बन्द था।"

"हमने सुना है कि इधर के लोगों ने भी यहाँ लूट-पाट मचायी।"

"हाँ साब भला-बुरा लोग सभी जगह होता है।"

उसने यह उत्तर कुछ इस तरह दिया कि खन्ना साहब को आगे सवाल करने का साहस नहीं हुआ। वे चुप हो गये। लेकिन हसनदीन के सामने वह सुबह घूम गयी जब अचानक जीत और लूट के नशे में चूर कबाइली ट्रकों में टंगमर्ग आये थे और उसे लूट-कर गुलमर्ग की ओर बढ़े थे। उन्हें गाँव से ज़बरदस्ती साथ ले लिया गया था और वे तीन दिन तक गुलमर्ग से सामान ढोते रहे थे। तीन-तीन घोड़े का सामान एक-एक घोड़ों पर लादा गया था, बहुत से कुली भी उन्होंने पकड़ लिये थे। यही नहीं, वे ख़ुद अपने सिरों और कन्धों पर लूट का सामान ढोते रहे थे। जब वे

चल दिये थे तो इर्द-गिर्द के गाँव वालों ने हल्ला बोल दिया था और जिन घरों के बराण्डों तक में उन्हें पाँव रखने का साहस न हुआ था, उनके खाने, बैठने और सोने के कमरों को वे रौंदते फिरे थे, कबाइलियों के हाथों जो छोटी-मोटी चीज़ें बच गयी थीं, वे उन्होंने लूट ली थीं। आपस की दुश्मनियाँ खुल खेली थीं और लूटने के बाद कुछ लोगों ने दुकानों को जला दिया था।

"यौ पीर!"—हसनदीन ने कल्पना की आँखों के आगे से उन दृश्यों को हटाते हुए लम्बी साँस भरी। तभी खन्ना साहब ने पूछा, "क्यों भई हसनदीन, अँग्रेज़ों के आने से पहले यहाँ क्या था? क्या कोई गाँव था?"

"नहीं साब, यहाँ तो, हम सुनता है, जंगल था और जहाँ पोलो ग्राउण्ड है, वहाँ दलदल था।"

"दलदल?"

"जी साब, हमने तो नहीं देखा, लेकिन दादा कहता था कि यह नाला इस जगह इसी पोलो ग्राउण्ड की गहराई में फैल जाता था और ज़मीन दलदल वाली हो गयी थी और गर्मियों में गडरिया लोग भेड़-बकरी चराता था।"

"अँग्रेज़ों से पहले यहाँ कोई न बसता था?"

"दादा कहा करता था कि सुलतान यूसुफ़ शाह कभी-कभी यहाँ आता था, लेकिन अँग्रेज़ ने ही गुलमर्ग को बसाया था।"

और हसनदीन के सामने गुलमर्ग के सुनहरी मैदान की वह तस्वीर खिच गयी जो दादा की बातें सुनकर उसकी कल्पना ने बना ली थी। प्रकृति जब वहाँ अपने आदिम रूप में थी और सनोबर

और शमशाद के जंगल इस मैदान को घेरे थे, जिनमें कहीं-कहीं चीड़, मेपल और स्प्रूस के पेड़ थे। न होटल, न बंगले, न झोपड़ियाँ, न पोलो और गोल्फ़ के मैदान, न सड़कें, न बाज़ार। नागिनों सरीखी छोटी-छोटी सँकरी पगडंडियाँ घास में सरसराती हुई जंगल में गुम हो जाती थीं। आठों पहर सन्नाटा रहता था। हवाओं की 'सर सर' और पत्तों की 'मर मर' ही से सन्नाटा जी बहलाता था या कभी खुले दिन की निस्तब्धता में किसी बन-पाखी की सीटी या किसी अकेले गडरिये की तान गूँज उठा करती थी। फिर इंसान के हाथ लगे (हाथ तो काले इंसान ही के लगे, लेकिन लगे गोरे इंसान के आदेश पर) और धीरे-धीरे जंगल सध गये, नाले बँध गये, पोलो और गोल्फ़ के मैदान बने, बाज़ार, होटल, कोठियाँ और छोटी-छोटी झोपड़ियाँ बनीं और अँग्रेज़ स्त्री-पुरुषों का, हिन्दुस्तान के हाकिमों का स्वर्ग—भारत के स्वास्थ्यकर स्थानों का राजा—गुलमर्ग अँग्रेज़ हाकिमों के सपनों को साकार करने लगा।

चढ़ाई शुरू हो गयी थी। हसनदीन ने लगाम छोड़ दी थी और घोड़े के पीछे-पीछे चढ़ा जा रहा था। 'वार वार' घोड़े को तेज़ चलते देखकर अचानक उसके मुँह से निकल जाता और घोड़ा सधी चाल से चलने लगता। आगे एक और टोली जा रही थी। तीन जने थे, पर घोड़ा एक ही था। शायद बारी-बारी से उस पर चढ़ते थे। सहसा खन्ना साहब को ख़याल आया, वे पैदल क्यों नहीं आये? जब ये लोग पैदल आ सकते हैं तो वे क्यों नहीं आ सकते...... और उन्होंने अपनी बीवी से कहा—

"हम भी एक घोड़ा कुक्कू के लिए ले लेते और ख़ुद पैदल आते। घोड़ों पर लदे चले आये तो सैर का मज़ा क्या रहा. . . ."

"पैदल तो साब तुम आ सकता था," हसनदीन ने उनकी बात काटकर कहा, "लेकिन तुम टाइम से वापस नहीं पहुँच सकता। तुम रिटर्न टिकेट लेकर आया है।"

खन्ना साहब चुप हो गये और हसनदीन फिर अपने विचारों का तार पकड़कर सोचने लगा—'और उन दिनों कितनी मौज थी! ऐसे विज़िटर गुलमर्ग में क़दम भी नहीं रखते थे। अँग्रेज़ लोग निहायत खुला ख़र्च करते थे। गर्मियों के चार महीनों ही में नहीं, सर्दियों में भी, जब सारी घाटी बर्फ़ से ढक जाती थी, उन्हें काम मिल जाता था—शीइंग (Skiing) के शौकीन ज़ौक-दर-जौक आते और अफ़राबट से चलते तो श्रीनगर के आधे रास्ते तक शीइंग करते, बर्फ़ पर फिसलते चले जाते। गुलमर्ग के बारे में गोरे हाकिमों के कैसे ख़्वाब थे—वे गोल्फ़ की ऐसी ही एक और सुन्दर ग्राउण्ड (लिंक्स) बनाना चाहते थे। मैदान के किनारे-किनारे घोड़े दौड़ाने के लिए रास्ता बिछाना चाहते थे, झील में मछलियाँ छोड़कर मछली का शिकार करने वालों को सुविधा पहुँचाना चाहते थे। अँग्रेज़ अपनी जाति के बूढ़े-जवान, स्त्री-पुरुष सब के लिए गुलमर्ग को बहिश्त बना देना चाहते थे। उन्होंने अपने कुछ ख़्वाब पूरे भी किये। पर तभी हिन्दुस्तान आज़ाद हो गया और तब उन्हें हिन्दुस्तान ही नहीं, कश्मीर भी अपने हाथ से निकलता महसूस हुआ। वे इस जन्नत को आसानी से छोड़ना न चाहते

थे। उन्होंने सरहद के भेड़िये इस उपवन में छोड़ दिये और चौबीस घंटों में घाटी की इस दुलहन को शृंगारहीन बना डाला। गुल-मर्ग की जो दुकानें जलने से रह गयी थीं, उन्हें पिछले वर्षों की बर्फ़-बारी और सन्नाटे ने ढा दिया। पहले छतों पर बर्फ़ गिरती थी तो उसे हटाने वाले भी थे। अब बर्फ़ गिरती तो सर्दियों भर पड़ी रहती और छतों को खा जाती। अब, जब वर्षों बाद वादी फिर जगी थी, नीचे श्रीनगर में दो-तीन बरस से विज़िटर आ रहे थे, गुलमर्ग की दुलहन उसी तरह शृंगार-विहीन, लुटी-पिटी उदास पड़ी थी। एक डिसपेंसरी तक न थी। सरकार ने दो दुकानें अवश्य खोली थीं और होटल वालों ने भी एक-आध मुन्शी अथवा एक दो बैरे भेजे थे, लेकिन इतने से क्या रौनक़ होती। पहले जहाँ विज़िटर महीनों रहते थे, वहाँ अब एक दिन, दो दिन, या ज़्यादा हुआ तो सप्ताह भर रहकर चले जाते थे।

लेकिन ख़ुदा का हज़ार-हज़ार शुक्र है कि मर्ग के भाग कुछ तो जगे थे, लोग आने तो लगे थे, ऐसा ही अमन रहा तो जहाँ अब दो दुकानें खुली हैं, वहाँ सारा बाज़ार खुल जायगा, जो बाज़ार गिर गये या जल गये हैं, वे फिर बन जायँगे। होटल बस जायँगे। बंगले, कॉटेज और क्लब बस जायँगे,. . . .गुलमर्ग फिर गुलज़ार हो जायगा और आस-पास के गाँवों की भूख भरेगी. . . .और घोड़े के पीछे चलते-चलते हसनदीन ने ख़ुदा के हुज़ूर में दुआ माँगी कि अब और झगड़ा न हो, लूट-पाट न हो, विज़िटर आयें, गुलमर्ग में ठहरें और फिर पुराने राग-रंग हों, सैर तमाशे हों, पिकनिकें और पार्टियाँ हों. . . .

"क्यों भाई हसनदीन, ये सामने टैंट कैसे लगे हैं?" सहसा खन्ना साहब ने उसकी विचार-धारा को तोड़ा।

"वही खिलनमर्ग है साब," हसनदीन क़दम आगे बढ़ाकर बोला, "बस अभी आध घंटे में वहाँ पहुँच जायँगे।" और शमशाद के पेड़ की पतली-सी शाख़ तोड़कर उसने घोड़े की पीठ को छुआ और घोड़े ने तेज़-तेज़ क़दम बढ़ाये।

उप्पल साहब, उनकी मुटकी भतीजी और वह अफ़रीकी युवक उनसे पहले पहुँच गये थे और ख़ेमे में लगे, एक सिक्ख के सफ़री रेस्तराँ के सामने, सफ़री मेज़-कुर्सियों पर बैठे थे।

"साब के लिए चाय बनाओ सरदार जी।"

खन्ना साहब को घोड़े से उतारने के बाद हसनदीन उस पतले छरहरे सिक्ख से बोला जो उन मेज़-कुर्सियों के पीछे अपने टैंट के आगे खड़ा विज़िटरों को चाय पिला रहा था।

"लओ बाश्शाहो, हुणे तैयार हो जांदी है।" और सरदार ने अँगीठी में कोयले डाले और उप्पल साहब के आगे से ख़ाली प्याले उठाकर धोने लगा।

गुलमर्ग से खिलनमर्ग की ऊँचाई तो पन्द्रह सौ फ़ुट थी, पर रास्ता ख़ासा ऊबड़-खाबड़ और ऊँचा-नीचा था। कल के थके खन्ना साहब के अंग दुखने लगे थे। घोड़े से उतरकर उन्होंने ज़ोर की अँगड़ाई ली और बीवी-बच्चे को साथ लेकर सरदार जी के सफ़री रेस्तराँ की ओर बढ़े।

"कहिए आ गये।" उप्पल साहब ने उनका अभिवादन किया। "मेरा तो यहाँ तक आते-आते हुलिया टाइट हो गया है और ये लोग अफ़राबट तक जाने की सोचते हैं।"

और ऊषा तथा जीवानन्द की ओर संकेत करते हुए वे अपने-आप हँसे।

"हुलिया तो अपना भी टाइट है, लेकिन अफ़राबट तक नहीं तो दोनाले तक तो जायँगे।" उन्होंने निगाह उठाकर दोनाले की दूधिया नहरों की ओर देखा। "ज़रा बर्फ़ को छूकर, उस पर खड़े होकर देखें तो कैसी लगती है।"

"नहीं पापो जी हम ऊपर तक जायेंगे, वहाँ चोटी तक। वहाँ हमारी फ़ोटो खींचना।" कुक्कू मचला।

"अरे हम तो तुम्हारे लिए ही कहते हैं। थक जायगा, नहीं हम तो अफ़राबट क्या, अलपत्थर और फ़रोज़न लेक तक जायँ।"

"पापो जी हम अलपत्थर और फ़रोज़न लेक तक जायेंगे, हम बिलकुल नहीं थकेंगे!" और बच्चा अपनी जगह से उठकर खन्ना साहब से चिमट गया।

"हाँ हाँ जायेंगे।" मिसेज़ खन्ना ने उसे पकड़कर घसीटते हुए कहा, "इधर बैठकर पहले चाय पी।" और उन्होंने रेस्तराँ के मालिक सिक्ख से पूछा, "सरदार जी कुछ खाने को है।"

"हाँ हाँ, भैन जी बिस्कुट ने, बन्द ने, तोस ने, की लओगे?"

"दो तोस इसके लिए दीजिए।"

"नहीं मम्मो जी मैं तो क्रीम-रोल लूँगा।"

"क्रीम-रोल यहाँ कहाँ पगले।" मम्मो जी ने कहा।

"नहीं नहीं, मैं तो क्रीम-रोल लूँगा।" बच्चा मचला।

"लओ बेटा जी, हुणे क्रीम-रोल दिन्ने आँ।" सरदार ने कहा और अन्दर ख़ेमे में चला गया। दूसरे क्षण उसके हाथ में ताज़ा दिखायी देने वाला क्रीम-रोल था।

बच्चे ने हाथ बढ़ाया था कि मम्मो जी ने उसकी बाँह पकड़ ली, "कितने का है?" उन्होंने जैसे गोली दागी।

"छः आने का।"

"तीन आने में श्रीनगर में क्रीम-रोल मिलता है और तुम इस सूखे-सड़े बासी के छः आने माँग रहे हो।"

"रात को यह श्रीनगर से आया है—एकदम ताज़ा है।"

"हाँ ताज़ा है! अभी मुश्किल से नौ साढ़े नौ बजे हैं और तुम श्रीनगर से ताज़ा पेस्ट्री ले आये हो।"

"बीबी जी अब तो दस बजने वाले हैं। अभी आपके आगे मेरा भाई यह सब लेकर पहुँचा है।"

मिसेज़ खन्ना ने इस बात का जवाब नहीं दिया। कुछ प्यार और कुछ डाँट से उन्होंने बच्चे से कहा, "नहीं बेटे, बासी पेस्ट्री नहीं खाते, पेट दुखने लगता है। अभी तोस ले लो।"

सरदार ने और बहस करना व्यर्थ समझा। वह क्रीम-रोल लिये हुए वापस टैंट में चला गया।

तभी खन्ना साहब चिल्लाये—"अरे सरदार जी चाय कितनी देर में देंगे।"

"बस हुणे तैयार हो जाँदी ऐ बाश्शाहो, ज़रा कोले बुझ गये सन।" और वह अँगीठी को हवा करने लगा, "ठंड वी किन्नी है,

हुणे अँगीठी बाली सी, इक केतली गर्म कीती ते कोले ठंडे पै गये।" अँगीठी को हवा करते-करते उसने कहा।

कुक्कू अभी तक क्रीम-रोल के लिए मचल रहा था कि हसनदीन ने कहा, "चलो तुम्हें वुलर दिखायें।"

बच्चा तत्काल उठा। खन्ना साहब भी उठे। चलते-चलते उन्होंने उप्पल साहब से कहा, "क्यों साहब आपने वुलर देखी?"

"हमें तो नज़र नहीं आयी। धुंध हो गयी है। दो घंटे पहले आते तो शायद नज़र आती।"

"आइए साहब हम दिखायें।" हसनदीन ने कहा और आगे-आगे चला।

खिलनमर्ग में पेड़-पौधे नहीं हैं। पेड़-पौधे खिलनमर्ग से नीचे रह जाते हैं। वहाँ तो बस पत्थर हैं या घास है, जहाँ भेड़ें चरती हैं। घास का यह टुकड़ा जिस पर सरदार जी ने टैंट लगा रखा था, बहुत बड़ा नहीं था। लेकिन एकदम समतल था और वहाँ एक भी पत्थर नहीं था और वह घाटी की ओर को बढ़ा हुआ था। हसनदीन उन्हें उस छोटे-से मैदान के सिरे पर ले गया।

"वो देखिए वुलर और जेहलम।" उसने सामने की ओर अँगुली बढ़ाते हुए कहा।

खन्ना साहब, उनकी बीवी और बच्चे ने आँखें फाड़-फाड़कर हसनदीन की अँगुली की सीध में देखा, पर उन्हें न कहीं झील दिखायी दी और न दरिया—आसमान साफ़ हो तो खिलनमर्ग की उस ऊँचाई से गुलमर्ग और उसके परे कश्मीर की सारी घाटी बिछी दिखायी देती है—जंगल, नदी-नाले, धान के खेत, वुलर

झील और उसके परे हरमुख और नाँगा पर्वत की भव्य बर्फ़ानी चोटियाँ—लेकिन सूरज चढ़ आया था, हल्की-हल्की धुंध धरती पर छा गयी थी और यद्यपि निकट के जंगल नदी-नाले और धान के खेत दिखायी देते थे, लेकिन वुलर और जेहलम और हरमुख और नाँगा पर्वत के हिम-मंडित शिखर उस धुंध में दिखायी न दे रहे थे।

"कहाँ है वुलर झील, मम्मो जी ?" बच्चे ने माँ से चिमटते हुए पूछा।

"हमें तो कहीं दिखायी नहीं देती।" मम्मो जी झल्लाकर बोलीं।

"मेरी अँगुली की सीध में देखिए मेम साब।" हसनदीन ने दूर उत्तर के पहाड़ों की ओर संकेत करते हुए कहा, "वह उस पहाड़ी के साथ जहाँ अरबी ऊँटों के-से दो कोहान बने हुए हैं।"

"अच्छा—वहाँ—।" खन्ना साहब सहसा प्रसन्न होकर बोले। फिर उन्होंने अपनी बीवी को बताते हुए कहा, "देखो, वह ऐम जैसी पहाड़ी है न. . . ."

"ऐम ? ऐम क्या ?"

"ऐम नहीं जानतीं, अरे अँग्रेज़ी का अक्षर ऐम—वह देखो सामने के पहाड़ों के इधर बीच में ऐम जैसी पहाड़ी।"

"जी !"

"जी, उससे परे पहाड़ों तक जो गहराई है, वही वुलर झील है," हसनदीन बोला, "और वो उसके इधर जो पतला-पतला लकीर है, वही जेहलम दरिया है।"

"हाँ हाँ," खन्ना साहब कुछ अतिरिक्त प्रसन्नता से बोले, "समझ गये, समझ गये !" हालाँकि इस उल्लास के बावजूद उनके स्वर में निश्चय का अभाव था।

"क्या समझ गये !" उनकी बीवी झल्लायी, "हमें तो कुछ दिखायी नहीं देता और यह कहता था कि खिलनमर्ग से बड़ा अच्छा व्यू दिखायी देगा। झूठे वादे करके ये लोग बाहर से आने वाले भोले-भाले लोगों को ठगते हैं।"

"हमको 'बापम रिशी' की कसम मेम साब, अगर हम झूठ बोला हो। तुम उस सिक्ख से पूछो कि सुबह-सुबह कैसा अच्छा व्यू दिखायी देता है, इसलिए हम बोलता था सुबह आने को। हम तो छः बजे आ गया था। उसी वक्त चलता तो यह धुंध और बादल नहीं होता। एकदम क्लीयर व्यू दिखायी देता। वो देखिए बादलों में हरमुख की चोटी और नाँगा परबत। इस वक्त बादल है फिर भी दोनों चोटी दिखायी देता है।"

खन्ना साहब ने उधर निगाह डाली। सफ़ेद-सफ़ेद बादलों में बर्फ़ानी चोटियों को अलग कर लेना आसान न था, लेकिन उसी अतिरिक्त उल्लास से उन्होंने कहा, "हाँ हाँ दिखायी देती हैं।"

"अफ़राबट से व्यू और भी अच्छा दिखायी देगा, साब ! हम साब को सब दिखायेगा। साब को चाय जल्दी पीना चाहिए। वापस बस पकड़ना है तो एक बजे ऊपर होना चाहिए।"

खन्ना साहब की बीवी और बच्चा वुलर और जेहलम को देखने का असफल प्रयास कर रहे थे, जब रेस्तराँ वाले सिक्ख ने

आकर कहा, "साब चाय तैयार है, आकर पी लें, फिर व्यू देखें, ठंडी हो जायगी।"

"लीजिए साहब हमने तो तय कर लिया है," खन्ना साहब को अपने पास की कुर्सी बैठने के लिए देते हुए उप्पल साहब हँसे, "ऊषा और जीवानन्द आपके साथ फ़रोज़न लेक देखने जायेंगे, हम दोनाले पर आपकी प्रतीक्षा करेंगे।"

और उन्होंने गठिये के उस मूज़ी रोग की प्रशंसा में बड़े प्यार से भारी भरकम गालियाँ दीं, जिसके कारण उनके लिए चढ़ाई पर चढ़ना एकदम असम्भव था।

"मेरा तो अपना इरादा दोनाले से वापस फिरने का है, लेकिन यह बच्चा तंग कर रहा है ऊपर जाने को।"

रेस्तराँ वाले सिक्ख ने चाय का प्याला उनके आगे रख दिया और तोस बनाकर उनके बच्चे को देने लगा। तब खन्ना साहब ने देखा कि हसनदीन अभी तक उनके पास खड़ा है।

"क्यों क्या बात है हसनदीन," उसकी याचनापूर्ण दृष्टि को लक्ष्य करके खन्ना साहब ने पूछा।

"हुज़ूर हम लोगों को चाय के लिए पैसे मिल जायँ।"

"पैसे क्या करोगे ?" खन्ना साहब बोले, "एक-एक प्याला तुम लोग भी पी लो !"

"जी नहीं साब, हम उधर टैंट में पियेगा।"

तब खन्ना साहब ने देखा कि पीछे भी एक छोटा-सा मैला टैंट लगा है, जहाँ कुछ घोड़े वाले और कुली चाय पी रहे हैं।

"नहीं, नहीं तुम भी यहीं पियो।" उन्होंने कहा और रेस्तराँ वाले सिक्ख को आदेश दिया कि उनके लिए भी एक-एक प्याला बनाये।

"जी नहीं, ये लोग हमारी चाय नहीं पीते।" सिक्ख के स्वर में कुछ अजीब-सी विवशता थी।

"तुम बनाओ तो सही, ये पियेंगे।"

"साब हमें क्या एतराज़ हो सकता है, हम बना देंगे।"

तब हसनदीन ने आगे बढ़कर किंचित दृढ़ता से कहा, "जी नहीं साब, हम यहाँ चाय नहीं पीता। आप हमें पैसे दीजिए।"

"पैसे-वैसे नहीं मिलेंगे। तुम्हें चाय पीना है या हमसे पैसा ठगना है?"

"साब हम लोग यहाँ चाय नहीं पीता। अपने खेमे में पीता है।"

"हमसे पीना है तो हमारे साथ पियो, नहीं अपने पैसे से पियो।"

"लाइए हमारे हिसाब में एक अठन्नी दे दीजिए।"

"यह लो रुपया ले लो।" खन्ना साहब ने जैसे बड़ी दरियादिली से कहा और रुपया उसकी ओर फेंककर चाय पीने लगे।

हसनदीन रुपया उठाकर पीछे टेंट में चला गया और उसने मुसलमान चायफ़रोश को तीनों के लिए नमकीन चाय बनाने को कहा। समावार में कश्मीरी चाय खौल रही थी। चायफ़रोश ने इंदू, ममदू और हसनदीन को मिट्टी का एक-एक प्याला थमा दिया और हल्की-सी ललाई लिये हुए नमकीन चाय उनके प्यालों

में उँडेली। चाय बहुत गर्म थी। हसनदीन के हाथ जलने लगे, तब उसने प्याले को फ़िरन के दामन में रखा और धीरे-धीरे चाय पीने लगा। उसका माथा पहली बार ठनका और उसे लगा कि सवारियों को समझने में उससे भारी ग़लती हो गयी है। अच्छे ख़ानदानी विज़िटर अपने साइसों को ऐसे मजबूर नहीं करते। बनी हुई बात थी, सब जानते थे कि कश्मीर के मुसलमान सिक्खों के हाथ का नहीं खाते। बात केवल हलाल-झटके की थी या उसकी जड़ें उस गहरी, तीव्र घृणा में जमी थीं, जो राणा रणजीत सिंह के सिक्ख सूबेदारों के अत्याचारों अथवा कुछ ही वर्ष पहले के साम्प्रदायिक दंगों ने मुस्लिम कश्मीरी जनता के दिलों में पैदा कर दी थी, कारण कुछ भी हो, हसनदीन बचपन से यह देखता आया था कि अच्छे विज़िटर, हिन्दू हों, अँग्रेज़ हों या सिक्ख उनकी इस भावना का मान रखते थे। खिलनमर्ग के पड़ाव पर चार-चार आने प्रति साईस मिल जाना मामूली बात थी। अँग्रेज़ तो रुपया भी दे देते थे। प्रकट ही खन्ना साहब ने पैसे बचाने के लिए यह बहाना बनाया था। 'जो चाय के लिए चार आने नहीं देता, वह बख़शीश और गाइड के पैसे क्या देगा!' हसनदीन ने सोचा।

उसने जल्दी-जल्दी चाय के घूँट भरे, लेकिन उसकी तबीयत नहीं खिली। "एक गर्म प्याला और दो। पैसेंजर तो ऐसा कंजूस मिला है कि चार आने चाय को नहीं दिये।" उसने कश्मीरी भाषा में चायफ़रोश से कहा।

"मैंने तो समझा, रुपया उसी ने दिया है। बख़शीश में।" ममदा कश्मीरी ही में बोला।

"बख़शीश-उख़शीश की कोई उम्मीद नहीं। बस दोनाले से आगे नहीं जायँगे। साब तो बनास्पति मालूम होता है।"

चायफ़रोश ने ठहाका लगाया। ममदा और ईदू भी हँसे, पर उनकी हँसी में दर्द और निराशा थी।

तभी चायफ़रोश ने समावार से हसनदीन का प्याला भर दिया। वह चुप-चाप चाय पीने लगा। मन में उसने तय कर लिया कि अब वह इस बात के सम्बन्ध में नहीं सोचेगा। लेकिन दो-एक घूंट भरने पर वही बात उसके सामने आ गयी। पिछले दिन की छोटी-छोटी घटनाएँ, जिनकी ओर अपने उत्साह में उसने पूरा ध्यान न दिया था, यथार्थ रूप में उसके सामने आने लगीं—वास्तव में इन हिन्दुस्तानी विज़िटरों को वह अच्छी तरह समझ नहीं पाया था। उसने ऐसे हिन्दुस्तानी सेठ भी देखे थे जो प्रकट बड़े सीधे-साधे लगते थे, खाने को सिर्फ़ दाल-रोटी खाते थे, लेकिन बख़शीश किसी अँग्रेज़ से कम न देते थे। यही कारण था कि जब खन्ना साहब ने लंच में सेंडविच न बनवाकर पराँठे लिये थे तो उसने इस बात को महत्व न दिया, लेकिन अब उसे याद आया कि यद्यपि उन्होंने सेंडविचों के प्रति उपेक्षा दिखायी थी, पर उप्पल साहब की सेंडविचों पर बढ़-बढ़कर हाथ मारा था। बापम ऋषि की ज़यारतगाह पर उनका कुछ न चढ़ाना और चाय आदि के लिए उन्हें कुछ न देना और दस रुपये का नोट दिखाकर टरका देना अब उसे अखरा और उसे लगा कि वह सेठ को पहचानने में धोखा खा गया है। बहुत कम ऐसे विज़िटर उसके सम्पर्क में आये थे, जिन्हें उसने अफ़राबट पर लैमन स्कुआश की बोतल ले जाने का

परामर्श दिया हो और उन्होंने लैमन ड्राप्स पर सन्तोष कर लिया हो। उसे सुबह ही ख़बरदार हो जाना चाहिए था, लेकिन सेठ ने बापम ऋषि को जाते समय अपनी दरियादिली का जो बखान किया था, वह उसके धोखे में आ गया। 'यक़ीनन यह कोई दालिया है।' उसने मन-ही-मन कहा, 'दालिया नहीं तो नम्बरी बख़ील (कंजूस) है।'

और जैसे इस निर्णय पर पहुँचने से उसका दिमाग़ कुछ साफ़ हो गया और वह चाय की चुस्की लेने लगा।

लेकिन खन्ना साहब चाय पीकर ऊपर जाने को तैयार हो गये थे। वह चाय पी रहा था, जब उन्होंने उनके टैंट के पास आकर कहा, "चलो भाई हसनदीन, लंच के टाइम हमें अफ़राबट पर पहुँच जाना चाहिए।"

हसनदीन चल दिया, यद्यपि चलने को उसका मन ज़रा भी न था। वह तो बड़ा ख़ुश होता यदि खन्ना साहब खिलनमर्ग ही से वापस हो जाते। लेकिन वह जानता था कि खिलनमर्ग आने वाले दोनाला की बर्फ़ को छुए और उस पर दो एक क़दम चलकर देखे बिना वापस नहीं जाते। दोनाला तक तो उसे जाना ही पड़ेगा—उसने सोचा—लेकिन दोनाला से आगे वह हरगिज़ नहीं जायगा। वे लोग अफ़राबट जायँ या अलपत्थर, लेकिन वह आगे नहीं बढ़ेगा।

सबसे आगे खन्ना साहब का बच्चा था, फिर उनकी बीवी,

फिर खन्ना साहब और उनके पीछे उप्पल साहब की पार्टी। उप्पल साहब की भतीजी और जीवानन्द आगे हो गये थे, लेकिन खन्ना साहब का बच्चा रोने लगा था कि वह सबसे आगे जायगा और ऊषा की मिन्नत करके उन्होंने बच्चे को सबसे आगे कर दिया था, फिर क्योंकि उनका बच्चा आगे था, इसलिए वे भी आगे हो गये थे। शमशाद और सनोबर के ऊँचे-ऊँचे छायादार पेड़ और बड़ी-बड़ी झाड़ियाँ कहीं बहुत नीचे छूट गयी थीं, खिलनमर्ग और दोनाले के मध्य केवल पत्थर थे और बीच-बीच में अपने-आप उग आने वाली घास अथवा छोटी-छोटी झाड़ियाँ या जड़ी-बूटियाँ! सामने अफ़राबट की चोटी थी, जिसकी बर्फ़ एक जमी हुई नदी की सूरत में नीचे तक चली आयी थी और दोनाले पर आकर दो हिस्सों में बँट गयी थी—एक हिस्सा खिलनमर्ग से कोई एक मील के अंतर पर था और दूसरा और भी नीचे दूसरी ओर चला गया था और दिखायी न देता था।

वे लोग नाले के उस हिस्से की ओर बढ़े जा रहे थे जो खिलन-मर्ग के निकट था। सब की निगाहें बर्फ़ की उस चमचमाती ढलान पर जमी थीं। हसनदीन जानता था कि वे लोग वहाँ पहुँचकर कुछ पल चुपचाप, ठगे-से खड़े मूर्खों की तरह उस बर्फ़ानी ढलान को देखते रहेंगे, फिर उसे छूकर देखेंगे, फिर शायद कोई बर्फ़ का गोला बनाकर एक दूसरे पर फेंके, या चार क़दम चलकर फिसले या बर्फ़ पर खड़े होकर एक-आध फ़ोटो ले—बस इतने भर के लिए ये लोग इतनी दूर आते थे! सिर्फ़ इतनी-सी बात के लिए वे लोग क्यों इतना रुपया ख़र्च करते थे? यह बात कभी हसनदीन की

समझ में न आयी थी। उसने सुन रखा था कि शहरों में यही बर्फ़ शर्बत या पानी में डालकर पी जाती है, फिर ये लोग उसी को यहाँ देखने के लिए हज़ारों मील की मंज़िल मारकर, हज़ारों रुपया ख़र्च करके क्यों आते हैं? और यद्यपि वह रोज़ ख़ुदा के हुज़ूर में दुआ करता था और 'बाबा रिशी' से मनाता था कि वे लोग और भी अधिक संख्या में आयें और दोनाला ही नहीं, अफ़राबट और अल-पत्थर तक जायें, लेकिन उसके यह सब मनाने का कारण उसकी समझ में आता था— वह ग़रीब था, वे लोग उसके घोड़ों पर आते थे और उसे मज़दूरी मिलती थी। जो बात वह समझ नहीं पाता था, वह था उन लोगों के आने का कारण। पैसे वाले हैं, मन के मुताबिक पैसा लुटाते हैं, यह कहकर वह अपने मन की जिज्ञासा शान्त कर लेता था। वह अपने साथियों के साथ बैठता था तो वे लोग इन शहरियों की सनक पर हँसा करते थे। अँग्रेज़ों की बात उनकी समझ में आती थी। वे लोग सर्द मुल्कों के रहने वाले थे, गर्मियों में नीचे रह पाना उनके लिए कठिन था, फिर वे यहाँ आकर बेवकूफ़ों की तरह बर्फ़ को देख-छूकर न चले जाते थे, वे कई-कई महीने यहाँ रहते थे, इस बर्फ़ का लुत्फ़ उठाते थे, उस पर खेल खेलते थे, भालू और कस्तूरी मृग का शिकार करने जाते थे, इन शहरियों की तरह मुँह बाये बर्फ़ को देखकर सन्तुष्ट नहीं हो जाते थे। और हसनदीन सोचता कि अगर उसके पास ख़ूब पैसा हो तो वह कश्मीर में रहने के बदले बम्बई कलकत्ता जाय! अपने लड़के का निकाह करने और गाँव में पक्का मकान बनवाने के बाद वह ख़ूब ज़मीन ख़रीदे; उसमें सेब, नाश्पाती, ख़ूबानी,

अख़रोट और बादाम के पेड़ लगाये और उनका व्यापार करे और दिल्ली, बम्बई और कलकत्ता की सैर करे......वहाँ की सुनी-सुनायी रंगीन ज़िन्दगी की अस्पष्ट-सी तस्वीरें उसकी कल्पना में घूम जातीं और उसे समझ न आता कि ये शहरी उस रंगीन ज़िन्दगी को छोड़कर उन उदास तनहा पहाड़ों में क्या करने आते हैं।

अभी वे दोनाले से इधर ही थे कि खन्ना साहब ने आँखों पर काला चश्मा लगा लिया। बस पर उन्हें किसी यात्री ने बताया था कि चमकती बर्फ़ को सीधी आँखों कदापि न देखना चाहिए, नज़र कमज़ोर हो जाती है और श्रीनगर पहुँचते ही उन्होंने पहली बात यह की थी कि एक बाज़ारी चश्माफ़रोश से बड़े सस्ते अमरीकी रंगीन चश्मे ख़रीद लिये थे जो आँखों पर कीमती चश्मों-ऐसे लगते थे। स्वयं चश्मा लगाकर पत्नी और बच्चे को भी उन्होंने चश्मे लगाने का आदेश दिया।

हसनदीन हँसा। यह लोग कितने मूर्ख हैं, उसने मन-ही-मन कहा, बर्फ़ पर तो मिट्टी की तह जमी है, उसमें वह चमक कहाँ जो सर्दियों में होती है, ये लोग सर्दियों में आयें तो शायद आँखों पर काली पट्टियाँ बाँध लें। फिर उसे ख़याल आया कि ये लोग पैसे वाले हैं, व्यर्थ की चीज़ों पर उड़ाने के लिए इनके पास पैसा है और अभी उसके मस्तिष्क में यह ख़याल मूर्त रूप भी न ले पाया था कि उसे उनके साथ अलपत्थर तक चले जाना चाहिए कि उसके सामने चाय वाली घटना आ गयी और उसने तय किया कि वे अमीर चाहे हों, लेकिन बड़े कंजूस हैं और चाहे जो हो, वह दोनाले के आगे उनके साथ कदापि न जायगा।

दोनाले से काफ़ी ऊपर, किनारे पर भेड़ों का एक बड़ा-सा रेवड़ बैठा था। घोड़ों की पदचाप सुनकर वे घबराकर उठीं और उनमें से एक बर्फ़ को पार करती हुई दूसरे किनारे की ओर चल दी। दूसरी उसके पीछे चली, फिर तीसरी, फिर चौथी . . . . ढालुवीं बर्फ़ पर काली भूरी भेड़ों की पतली-सी लकीर खन्ना साहब को बड़ी भली लगी। घोड़े से उतरते ही अपने बच्चे की अँगुली पकड़े हुए खन्ना साहब भागे और उन्होंने जाकर बर्फ़ को छुआ, फिर उन्होंने बच्चे के साथ ही बर्फ़ को खोदकर गोले बनाये और एक दूसरे पर फेंके। उनकी बीवी आकर किनारे के एक पत्थर पर बैठ गयी। खन्ना साहब ने बर्फ़ का एक गोला उसकी ओर फेंक दिया। वह ऐसे बची जैसे बर्फ़ का नहीं, जलता हुआ ईसपात का गोला उसकी ओर आ रहा हो। तब खन्ना साहब ने अपना कैमरा निकाला और उस किनारे पर फ़िट किया, उस पर काला कपड़ा डाला और अपनी बीवी और बच्चे को आदेश दिया कि वे दोनों बर्फ़ में से उभरी एक शिला पर जा बैठें।

दोनों चन्द क़दम बर्फ़ पर गये होंगे कि फिसल गये।

कैमरा वहीं छोड़कर खन्ना साहब भागे, लेकिन इससे पहले कि उन्हें उठाते, वे स्वयं फिसल गये। बर्फ़ और विशेषकर ढ़ालुवीं बर्फ़ पर चलने के लिए पैरों में मूँज के जूतों और किंचित अभ्यास की आवश्यकता है। एड़ियों को बर्फ़ में दबाकर चलना पड़ता है। तीनों एक दूसरे को थामकर उठे, लेकिन दो क़दम चलकर फिर गिर पड़े।

इसी बीच उप्पल साहब भी आ गये थे और किनारे पर खड़े

होकर उस जमे हुए नाले का दर्शन कर रहे थे। खन्ना परिवार को एक साथ गिरते देखकर वे हँसी न रोक सके। हाँ, यह कोशिश उन्होंने ज़रूर की कि उनकी हँसी खन्ना साहब न सुन सकें। जीवानन्द केवल मुस्कराया। ऊषा खुलकर हँसी और खन्ना साहब की पत्नी को उठाने के लिए भागी। लेकिन बर्फ़ पर पहला क़दम पड़ते ही फिसल गयी। अब के उप्पल साहब ज़ोर से हँसे।

हसनदीन अपना घोड़ा ममदू के हवाले करके दोनाले के किनारे आ बैठा था। उसके सिर में हल्का-सा दर्द था। बैठे-बैठे उसने पाँव पसार लिये थे और कम्बल को कुहनी के नीचे गोल-मोल करके इस तरह तिरछा लेट गया था कि आराम भी कर ले और कैमरे से फ़ोटो लिये जाते भी देख ले। उसने कभी फ़ोटो न खिंचवाया था और वह जब भी कभी कहीं फ़ोटो खींचे जाते देखता, बच्चों की तरह रुककर देखने लगता। कोई दूसरा वक्त होता और उसकी सवारी बर्फ़ पर फिसल जाती तो वह भागकर उसे उठाता और बर्फ़ पर चलना सिखाता, लेकिन न जाने क्यों, न जाने कैसी शिथिलता अनायास उसके तन-मन पर छा गयी थी कि वह चाह कर भी नहीं उठा, बल्कि एक बड़ी अस्पष्ट-सी मुस्कान उसके ओठों पर फैल गयी। लेकिन अपनी सवारी के गिरने पर हँसना गुनाह ख़याल कर उसने तत्काल उस मुस्कान को ओठों से पोंछ दिया, मगर जब ऊषा भी फिसल गयी और खन्ना साहब उठने का प्रयास करते हुए फिर फिसल गये तो उसकी स्वाभाविक तत्परता ने उसे झकझोर दिया। वह उठा। उसने पहले ऊषा को उठाया और उसे वापस किनारे पहुँचा दिया, फिर बढ़कर उसने

न्ना परिवार को उठाया। उन्हें बताया कि बर्फ़ पर कैसे एड़ी ाड़कर, उस पर ज़ोर देते हुए चलना चाहिए और वह पहले मेम ाहब और छोटे साब को नाले के बीच उभरे शिला-खंड पर बैठा ाया, फिर उसने साहब को वापस कैमरे तक पहुँचा दिया और उन ोनों को हिदायत दी कि वापसी पर वे लोग उन्हीं पद-चिन्हों पर ांर रखते हुए वापस आयें जो शिला-खंड को जाते हुए बर्फ़ पर न गये थे। इस तरह फिसलने की कोई सम्भावना न रहेगी। उन्हें ह सब समझाकर वह फिर चुपचाप किनारे अपनी जगह आ ंठा और खन्ना साहब को अपने बीवी-बच्चे का और जीवानन्द ो उनका और चचा-भतीजी का फ़ोटो लेते देखता रहा। ेकिन यह सब देखते-देखते, न जाने कैसे, गत दिन की वही छोटी-छोटी घटनाएँ उसके सामने आने लगीं जिन्हें वह खिलनमर्ग से ोनाले तक दोहरा-तेहरा चुका था। फिर बार-बार वही चाय ाली बात उसके मन को कोंचने लगी। खन्ना साहब की और कोई ात उसे इतनी बुरी न लगी थी, जितना उनका उसे सिक्ख की ुकान पर चाय पीने के लिए विवश करना। आज तक कभी ऐसा ा हुआ था। ऐसे घटिया यात्री भी मिल जाते थे जो चाय के लिए ंसे न देते थे, लेकिन ऐसा कोई न मिला था जिसने उनकी धार्मिक ावना का मान न रखा हो। बार-बार उसके मन में यही बात ाती थी कि सिक्ख यात्री तक उन्हें अलग अपने टैंट से चाय पीने े लिए पैसे दे देते हैं। हसनदीन यों सीधा-सरल आदमी था, पर तने बरसों से विज़िटरों को लाते-ले जाते वह उन्हें अच्छी ारह समझ गया था। खन्ना साहब के कपड़ों, उनकी दिखावे की

फ़ूँ-फ़ाँ और लनतरानियों ने उसे चाहे धोखे में रखा हो, पर चाय की उस घटना के बाद उनकी असलियत उस पर पूरी तरह खुल गयी थी। वे उदार भी बने रहना चाहते थे और पैसे भी न देना चाहते थे। बाबा ऋषि के यहाँ दस-दस के नोट दिखाकर उसे टाल दिया और यहाँ अपने साथ (सिक्ख की दुकान पर) चाय पिलाने का बहाना बनाकर जान छुड़ा ली. . . .और यह सब सोच-सोचकर उसका मन बेतरह खिन्न हो उठा था। चाय की वह छोटी-सी घटना अनायास उसके मन को एकदम उत्साहहीन बना गयी थी और अपनी सवारी की जी-जान से ख़िदमत करने का, उसे अच्छी-से-अच्छी जगह दिखाने का सारा उत्साह बुझा गयी थी — दो रातों का रतजगा और थकान, जिसे अच्छी मज़दूरी और बख़शीश की आशा ने अपने प्रकाश में छिपा रखा था, न जाने उसके तन-मन के किन तारीक कोनों से निकलकर उसकी नस-नस में भर गयी थी। उसका सिर भारी होने लगा, उसकी आँखें झपने लगीं और फ़ोटो खिंचते देखते-देखते वह लेट गया और फिर सो गया।

खन्ना साहब अपने बीवी-बच्चे के फ़ोटो खींच चुके तो उनकी पत्नी ने पूर्ववत् उनका एक फ़ोटो बच्चे के साथ लिया। जीवानन्द ने ऊषा के कई पोज़—कभी बर्फ़ पर बैठे, कभी गोले बनाते, कभी बर्फ़ उड़ाते और कभी बर्फ़ पर फिसलते समय के—लिये। फिर ऊषा ने भी उसके दो-तीन पोज़ लिये (चचा को वे दोनों नहीं भूले—उनके पोज़ भी उन्होंने साथ-साथ लिये।) जब वे लोग हर तरह से दोनाले को देख चुके और उनकी समझ में न आया कि

अब क्या करें, तब उन्होंने फ़ैसला किया कि अफ़राबट चलें। क्योंकि चचा ने फ़ैसला दे दिया कि वे स्वयं आगे नहीं जायँगे, इसलिए ऊषा और भी पीछे पड़ गयी कि वह अफ़राबट देखे बिना वापस न जायगी और अन्त को चचा ने जीवानन्द से कहा कि वे दोनों अफ़राबट तक हो आयँ, वे ख़ुद दोनाले पर उनकी प्रतीक्षा करेंगे और उन्होंने खन्ना साहब से भी कहा कि वे उनकी भतीजी को अफ़राबट दिखा लायँ। कुक्कू ने अपने पिता के उत्तर से पहले ही अपनी उस नयी आँटी का हाथ पकड़ लिया और घोड़े की ओर बढ़ा।

तब खन्ना साहब ने हसनदीन को आवाज़ दी। जब दो आवाज़ें देने पर भी वह नहीं उठा और उन्होंने देखा कि इस बीच में वह आधा कम्बल ऊपर और आधा नीचे लेकर सो गया है तो उन्होंने उसे झकझोरा।

आँखें मलता हुआ वह उठा।

"चलो भई जल्दी चलो," खन्ना साहब ने कहा।

हसनदीन का सिर दर्द करने लगा था, अँगूठे और तर्जनी की सहायता से दोनों कनपटियाँ दबाते हुए उसने कहा, "साब, घोड़ा तो यहीं तक आता है, आगे रास्ते पर बर्फ़ पड़ी है।"

"तुमने कहा था कि जहाँ तक चलेगा, ले जायगा।"

"नहीं साब आगे नहीं जाता। खिलनमर्ग से दोनाले तक आने का एक रुपया और लगता है, लेकिन आगे घोड़ा नहीं जाता। साब, ज़्यादा लोग तो दोनाले तक आता है।"

तभी खन्ना साहब ने देखा—कुछ लोग ऊपर जा रहे हैं—दो विलायती साहब थे और कुछ देसी लोग।

"क्यों साब, कहाँ तक जाने का इरादा है ?" उन्होंने आगे जाने वाले से पूछा।

"अभी तो ऊपर अफ़राबट तक चलेंगे। समय रहा तो फ़रोज़न लेक देखेंगे।"

"कैसी है फ़रोज़न लेक ?"

"यह तो हमने भी नहीं देखा।"

"देखिए साब, वो लोग पैदल जा रहे हैं।" सहसा हसनदीन ने कहा, "आगे घोड़ा नहीं जाता।"

लेकिन खन्ना साहब गर्म हो गये, "तुमने कहा था—मैं अलपत्थर तक ले जाऊँगा, घोड़ा जहाँ तक जायगा, ले जाऊँगा। हमको धोखे से लाये हो और यहाँ आकर बैठ गये हो। हमें पता होता कि ऊपर तक नहीं जाओगे तो हम खिलनमर्ग से ही मुड़ जाते, यहाँ तक भी नहीं आते।"

उप्पल साहब, ऊषा और जीवानन्द चुपचाप तनिक ऊपर रास्ते पर खड़े, यह बहस सुन रहे थे। उनके साइसों ने उन्हें दोनाले तक पहुँचाने की बात की थी। लेकिन यदि खन्ना साहब आगे घोड़ों पर जायँगे, वे सोच रहे थे, तो वे भी जायँगे।

हसनदीन चुप रहा। उसके अन्तर में कोई कह रहा था—बस यहीं तक, अब मत हिलना। ऊपर मत जाना, पहचानने में कहीं ग़लती हो गयी है। यहाँ तक के दाम वसूल करो, आगे न मरो। यहाँ तक तो सरकारी रेट है, मिल ही जायगा। ऊपर का क्या भरोसा ? कितनी मेहनत पड़े और बाद में पाई न मिले। उसके सिर में दर्द धीरे-धीरे बढ़ रहा था। उसका मन होता था,

ये लोग लौट चलें, वह पैसे वसूल करे, घर जाकर गर्म चाय के दो प्याले पिये और सो जाय और अगला सारा दिन सोया रहे।

लेकिन खन्ना साहब गरज रहे थे--

"चलो हम आगे नहीं बढ़ेंगे, लेकिन यह जान लो कि एक कौड़ी हम नहीं देंगे। चलो उठाओ।"

हसनदीन घोड़ों की तरफ़ बढ़ा। वह जानता था कि यहाँ तक के पैसे वे लोग झख मारकर देंगे। हाँ, शोर ज़रूर मचायेंगे। न देने के लिए कहेंगे, लेकिन सरदार हरनामसिंह की ड्यूटी है, पैसे तो वह ले ही मरेगा।

लेकिन खन्ना साहब कच्ची गोलियाँ नहीं खेले थे। हसनदीन के मुड़ते ही गरजे, "ठीक है, तुम जाओ, अपने घोड़े ले जाओ। हमको नहीं चाहिएँ घोड़े, हम पैदल चलेंगे।"

और कैनवस का बैग उससे छीनकर वे चन्द क़दम बढ़े।

उप्पल साहब बड़ी उत्सुकता से यह सब कौतुक देख रहे थे। खन्ना साहब की बीवी और बच्चा असमंजस में वहीं खड़े थे। बीवी सोच रही थी—कहीं सचमुच पैदल ही न चल दें। बढ़कर हसनदीन से बड़े खिजलाहट भरे स्वर में बोली, "जब इतनी बातें करके लाये थे तो क्यों नहीं ले जाते ऊपर।"

"मेम साब घोड़ा इससे आगे नहीं जाता।"

"जहाँ तक जाते हैं, ले चलो।"

"मेम साब हमारा सिर दर्द कर रहा है। नहीं हमको पैसा मिलता, हम क्यों नहीं जाता?"

"लो मैं तुम्हें बाम देती हूँ, मल लो।" और उसने खन्ना साहब को आवाज़ दी, "सुनिए जी, ज़रा बैग दीजिए!"

खन्ना साहब वापस हुए। वास्तव में वे आगे बढ़े नहीं थे, बढ़ने का अभिनय भर कर रहे थे।

अपने पति से बैग लेकर, उसमें से अमृतांजन निकालकर खन्ना साहब की बीवी ने थोड़ी-सी बाम हसनदीन को दी, "जहाँ दर्द हो रहा है, वहाँ मल लो।"

बाम को मलते-मलते हसनदीन ने सोचा—उसे चलना चाहिए! वह टंगमर्ग के अड्डे का साईस, गुलमर्ग से उसे सवारी मिलेगी नहीं। दिन ख़राब हो जायगा। वापसी के पैसे मारे जायँगे। सेठ खिलनमर्ग से पैदल उतरेगा तो फिर उनके घोड़ों पर तो जायगा नहीं. . . .माथा ठनक रहा है. . . .बख़शीश मिले न मिले, उसे चलना ज़रूर चाहिए। मन से उसने समझौता कर लिया। वह अपनी तरफ़ से ख़िदमत कर देगा। फिर जो ख़ुदा को मंज़ूर हो।

और उसने तीनों को घोड़ों पर चढ़ाया, खन्ना साहब की बीवी से बैग लेकर कन्धे पर लटकाया और चल पड़ा। उप्पल साहब ने भी अपने साइसों को तैयार कर लिया कि जहाँ तक वे लोग घोड़ों पर जायँगे, वहाँ तक वे ऊषा और जीवानन्द को ले जायँ। स्वयं उन्होंने दोनाले अथवा खिलनमर्ग पर उनकी प्रतीक्षा का फ़ैसला किया।

"यू सी, दे आर रोगज़ (Rogues) आई नो हाउ टु डील विद देम।" उन्होंने उप्पल साहब और अपनी बीवी को सुनाते हुए विजयोल्लास से कहा।

हसनदीन को लगा जैसे उसके सिर में कोई हथौड़े मार रहा है। उसने कम्बल सिर से लपेट लिया।

उनकी बीवी इतनी अँग्रेज़ी न पढ़ी थी कि अपने पति की बात ठीक से समझ लेती, पर वह बात समझ गयी और अपने पति की बुद्धिमानी पर प्रसन्न होकर मुस्करायी।

तभी उनके बच्चे की नज़र एक लड़के पर गयी जो अफ़राबट से बर्फ़-गाड़ी पर फ़र्राटे से फिसलता चला आ रहा था और उनके निकट आकर दोनाले पर रुक गया था। उसके पीछे परिवार के दूसरे लोग बर्फ़-गाड़ियों पर तेज़ी से उतरे आ रहे थे। और कुक्कू चिल्लाया, "पापो जी हम भी बर्फ़-गाड़ी पर चढ़ेंगे।"

"हाँ हाँ, चढ़ना, चढ़ना!" खन्ना साहब ने कहा और घोड़े को टिटकारी मारी।

और जैसे वह इसी संकेत की प्रतीक्षा कर रहा था, एक कश्मीरी हातो कन्धे पर बर्फ़-गाड़ी लादे किनारे के पत्थरों से निकलकर उनके रास्ते पर आ गया और उनके साथ-साथ चलने लगा।

"क्यों भई स्लेज पर अफ़राबट से उतरने का फ़ी सवारी क्या लेते हो?" खन्ना साहब ने पूछा।

"आठ रुपये!"

"आठ रुपये!" खन्ना साहब हँसे और सिर को झटका देकर उधर से ध्यान हटा, उन्होंने घोड़े को एड़ लगायी।

लेकिन वह कश्मीरी उनके साथ-साथ चलता रहा।

दोनाले से आगे रास्ता बायीं ओर के पत्थरों और चट्टानों में कभी बायें और कभी दायें होता, चक्कर खाता ऊपर चढ़ता था। दायीं ओर अफ़राबट से दोनाले तक आने वाली बर्फ़ की ढलान थी। न जाने बर्फ़ कितनी गहरी जमी थी! उसके नीचे —कहीं बहुत नीचे—नाला बहता होगा, लेकिन सर्दियों में बर्फ़ से सारी-की-सारी खड्ड भर गयी थी, बर्फ़ किनारों तक आ गयी थी और अभी तक पिघली नहीं थी। ज्यों-ज्यों वे अफ़राबट की ओर चढ़ते जाते थे, बर्फ़ का पाट बढ़ता जाता था और ऊपर—बहुत ऊपर—अफ़राबट की चोटी पर तो बड़ा चौड़ा हो गया था और अनायास मन में जिज्ञासा उठती थी कि दूसरी ओर क्या बर्फ़ का मैदान है अथवा दोनाले जैसी बर्फ़ीली ढलान! बार-बार वे इस बर्फ़ के किनारे आते, फिर दूर हो जाते, फिर निकट आ जाते और इस तरह मन्थर गति से ऊपर चढ़ते जाते।

वास्तव में रास्ता कोई था नहीं, दर्शकों के आने-जाने से एक छोटी-सी पगडंडी बन गयी थी और हसनदीन लगातार बड़बड़ाता जा रहा था कि उसके किसी घोड़े की टाँग टूट जायगी; घोड़ा दोनाले तक रहता है, ऊपर नहीं जाता; अगर साब टंगमर्ग पर पक्की तरह कह देता कि वह अलपत्थर जायगा तो वह उसे दूसरी ओर से लाता; इधर से अलपत्थर जाने वाला लोग तो दोनाले पर उतरकर आगे पैदल जाता है।

लेकिन खन्ना साहब उसकी बड़बड़ाहट पर कान दिये बिना बर्फ़-गाड़ी वाले से भाव-ताव किये जा रहे थे। इस एक मील के रास्ते में वह आठ रुपये से चार रुपये तक उतर आया था और वे

एक रुपये से डेढ़ रुपये तक बढ़ गये थे। न जाने उसने अपने साथियों को इशारा कर दिया था अथवा चूँकि वह अभी उनके घोड़े के साथ लगा चल रहा था, इसलिए वे समझ रहे थे कि वह मामला पटा रहा है और बर्फ़-गाड़ियाँ कन्धों पर रखे किनारे-किनारे सीधी चढ़ाई चढ़ रहे थे। रास्ता जब बर्फ़ के निकट आता तो वे धीरे-धीरे चढ़ते दिखायी दे जाते। शायद ये वही लोग थे जो कुछ देर पहले ऊपर से सवारियाँ लाये थे।

कुक्कू कई बार बर्फ़-गाड़ी पर चढ़ने के लिए अनुरोध कर चुका था, 'पापो जी हम अफ़राबट से बर्फ़-गाड़ी पर उतरेंगे न ?' वह थोड़ी-थोड़ी देर बाद कुछ ऐसे ही बात करता और जब खन्ना साहब कहते—'हाँ हाँ, बेटा जी उतरेंगे' तो वह बायें हाथ में लगाम पकड़कर दायें हाथ से हवा को ऊपर से नीचे तक चीरता कि यों सर्र से उतरेंगे और लगातार हाथ से हवा में गाड़ी चलाये जाता। फिर कुछ देर बाद अपनी माँ से पूछता—'क्यों मम्मो जी, आप भी मेरे साथ बर्फ़-गाड़ी में उतरेंगी न ?' वह हर तरह से बर्फ़-गाड़ी की सैर के सम्बन्ध में आश्वस्त हो जाना चाहता था।

खन्ना साहब को उसका यों बार-बार पूछना बड़ा बुरा लगता था। यदि स्लेज वालों को यह विश्वास हो गया कि ये लोग ज़रूर बर्फ़-गाड़ियाँ किराये पर लेंगे तो वे कभी भाव कम न करेंगे और चार रुपये प्रति सवारी तो वे इस जन्म में नहीं देंगे। इसलिए चाहे लड़के को उन्होंने आश्वस्त कर दिया था, पर गाड़ी वाले से कहा, "भाई तुम जाओ, क्यों परेशान कर रहे हो, तुम्हें देखकर बच्चा मचलता है, क्यों अपना वक्त ख़राब करते हो, पीछे

सवारियाँ आ रही हैं, बड़े अमीर लोग हैं, उन्हें घेरो, हम पैदल ही आयँगे।"

लेकिन बर्फ़-गाड़ी वाला निरन्तर पीछे लगा था, "साब, तुम इतना बड़ा सेठ है, क्या चार-छः रुपये का मुँह देखता है। इतनी दूर से कश्मीर की सैर को आया है। बर्फ़-गाड़ी पर अफ़राबट से उतरेगा तो जन्नत का मज़ा आ जायगा। हम तो ख़ुदा कसम आठ रुपया से डब्बल कम नहीं लेता। अभी तुम्हारे सामने हमारा साथी लोग आठ-आठ रुपये में ऊपर से सवारी लाया है।"

"अरे भाई कोई राजा-महाराजा होता तो इसी आठ के बदले अस्सी रुपये दे देता, पर हम ग़रीब आदमी है।"

"अरे सेठ क्या बात करता है। ग़रीब आदमी कश्मीर की सैर को नहीं आता। हज़ारों रुपया ख़र्च करके आया है, हम ग़रीब पर क्यों कसर निकालता है। तुम इतना बड़ा सेठ है......"

'बड़ा सेठ है'—हसनदीन उस भाव-ताव को देखकर मन-ही-मन झल्लाया—'ख़ाक बड़ा सेठ है! कोई बनिया-बक्काल है!'......उसका सिर दर्द से फटा जा रहा था। कुछ देर बाम की चुनचुनाहट रही थी और लगा था कि आराम आ रहा है, लेकिन अब फिर सिर में हथौड़े चलने लगे थे। ढीले होते कम्बल को उसने फिर सिर पर लपेटा। नाक में पानी चला आ रहा था, आस्तीन के बाज़ू से उसे पोंछा। मन-ही-मन उसने कहा—'पैसे से कोई थोड़ा ही बड़ा हो जाता है, बड़ा वह, जिसका दिल बड़ा!'

''क्या भाइ हमारा सादा करा दो ना, स्लेज वाले ने कुछ क़दम पीछे होकर कश्मीरी भाषा में हसनदीन से कहा।

"सेठ बड़ा कंजूस है।" हसनदीन ने कश्मीरी ही में उत्तर दिया, "लेकिन उसे शाम को टंगमर्ग से बस पकड़नी है और वह अलपत्थर भी देखना चाहता है, इसलिए बर्फ-गाड़ी लेगा ज़रूर, लेकिन दो-अढ़ाई से ज़्यादा नहीं देगा।"

और बर्फ़-गाड़ी वाले ने आगे बढ़कर कहा, "साब तुम्हारा बच्चा बर्फ़ पर सवारी करने को माँग रहा है, उसकी ख़ातिर हम तुमसे पौने चार रुपया ले लेगा। बस इससे कम हम एक डब्बल नहीं लेगा, तुम्हारा ख़ुशी गाड़ी लो, चाहे न लो।"

खन्ना साहब ने उत्तर में सिर्फ़ घोड़े को एड़ लगायी और टिटकारी भरी।

और हसनदीन ने सिर में पड़ते हथौड़ों के मध्य सोचा, वह बर्फ़ के पल तक जायगा, आगे एक क़दम नहीं रखेगा, चाहे सेठ उसका घोड़ा रखे चाहे छोड़े और उसने फ़िरन की आस्तीन से अपनी बहती नाक पोंछी।

यह बर्फ़ का पुल दोनाला से एक मील ऊपर था। पुल-वुल वहाँ उस वक्त कुछ नहीं था, क्योंकि बर्फ़ अफ़राबट की चोटी से लगातार नीचे दोनाले तक चली गयी थी। एक-दो महीने बाद जब नीचे की बर्फ़ पिघल जाती होगी, और नीचे नाला तेज़ी से बहता दिखायी देता होगा तो इसे बर्फ़ के पुल की संज्ञा दी जाती होगी।

उस वक्त तो वहाँ इस किनारे से उस किनारे तक बर्फ़ पर एक मैली-सी पगडंडी बनी हुई थी। घोड़े इस किनारे रुक गये और हसनदीन ने कहा कि बस घोड़े इससे आगे नहीं जायँगे और वे लोग उतर जायँ।

"तुम बोला था—घोड़ा सीधा अफ़राबट तक जायगा।" खन्ना साहब ने घोड़े पर बैठे-बैठे कहा।

"साब तुम अगस्त में आता, यहाँ का रास्ता खुल जाता तो घोड़ा अफ़राबट तक जाता, लेकिन आगे रास्ता बन्द है। घोड़ा की टाँग टूट जायगा और घोड़ा फिसल गया तो तुम नीचे दोनाला तक लुढ़कता चला जायगा।"

खन्ना साहब क्षण भर चुप रहे। घोड़े पर बैठे रहे। फिर बोले, "ये घोड़े तो बर्फ़ पर चल लेते हैं।"

"साब हमको यहाँ तक आने पर ही दूसरे साईस गालियाँ दे रहे हैं। हमारा हुक्का-पानी बन्द कर देंगे। हम एक क़दम आगे नहीं जायगा।"

उसके स्वर में ऐसी दृढ़ता थी कि खन्ना साहब ने उतरने का फ़ैसला कर लिया, लेकिन वे उतरे नहीं। ज़िद्दी बच्चे की तरह बोले, "तुमने हमसे कहा था—हम अलपत्थर तक ले जायगा।" यह कहते हुए उन्होंने पीछे की ओर देखा—ऊषा और जीवानन्द घोड़ों से उतर रहे थे।

"साब, हम ले जाता पर रास्ता बन्द है," हसनदीन बोला। फिर निमिष भर रुककर उसने कहा, "हमको अपना फ़िकिर नहीं साब, घोड़े का भी फ़िकिर नहीं साब, हमको साब का, मेम साब

का और बच्चा का फ़िकिर है। कहीं घोड़ा का पैर फिसल गया तो हम ग़रीब मारा जायगा साब, हमारा नाम बदनाम हो जायगा साब।"

खन्ना साहब को भी उसकी या उसके घोड़े की चिन्ता नहीं थी, लेकिन उन्हें अपने बीवी-बच्चे की चिन्ता ज़रूर थी। वे घोड़े से उतर गये और उन्होंने अपने बीवी-बच्चे को भी घोड़ों से उतारा।

सामने पगडंडी इतनी पतली थी और बर्फ़ ऐसी ढालुवीं थी कि उसे देखते ही डर लगता था, "लेकिन हम बर्फ़ पर कैसे चलेंगे ?" सहसा उन्होंने कहा।

"उसका फ़िकिर नहीं। हम साब को ले जायगा! साब को पार पहुँचाकर आयेगा।"

"तुमको हमारे साथ अफ़राबट तक चलना होगा।"

"साब हमारा तबीयत ठीक नहीं।"

"हम तुमको ख़ुश कर देंगे।"

"उसका फ़िकिर नहीं, हम साब का गुलाम है, लेकिन हमारा सिर दर्द करता है, हम ठीक से खड़ा नहीं हो सकता।"

और हसनदीन ने घोड़े की लगाम ममदू को दी और उसे आदेश दिया कि वे लोग दोनाले पर उन सब का इन्तज़ार करें।

खन्ना साहब के बच्चे को किसी तरह का डर न था। वह सबसे पहले पार जाने को मचल रहा था। हसनदीन ने उसे साथ लिया। समझाया कि बायीं ओर को पैर बर्फ़ में दबाकर चलो और वह उसे सहारा देता हुआ विज़िटरों के जूतों से गँदली हो जाने वाली उस लकीर-सी पगडंडी पर बढ़ा।

बच्चा बर्फ़ के पार पहुँचकर ख़ुशी से उछलने लगा कि वह सबसे पहले पहुँचा। तब हसनदीन खन्ना साहब की बीवी को पार ले गया।

यद्यपि उनका बच्चा और बीवी हसनदीन के सहारे आसानी से उस बर्फ़ के पुल के पार हो गये थे, लेकिन खन्ना साहब दो बार फिसले। वे ऐसे घबराये हुए थे कि इर्द-गिर्द कैसा सुन्दर दृश्य है, यह देखना उनके लिए नितान्त असम्भव था। दूसरी बार जब वे फिसले और हसनदीन ने खींचकर उन्हें खड़ा किया तो उनकी दृष्टि बर्फ़ की उस ढलान पर लुढ़कती हुई नीचे तक चली गयी और उन्होंने देखा——नीचे, बहुत नीचे, जहाँ वे बैठे थे, चींटियों की एक कतार सरक रही है——वही भेड़ें थीं जो दूसरे किनारे चली गयी थीं, अब फिर उसी किनारे वापस आ रही थीं। सहसा एक ख़याल खन्ना साहब के दिमाग़ में कौंध गया। यदि वे फिसल जायँ, लुढ़कते चले जायँ तो ज़रूर उन चींटियों को रौंदते चले जायँगे......और उनकी भयभीत कल्पना ने देखा कि वे फिसल गये हैं, लुढ़कते जा रहे हैं और उन चींटियों-सी भेड़ों को अपने साथ लुढ़काते हुए कहीं बहुत नीचे जा गिरे हैं, जहाँ बर्फ़ खत्म हो गयी है और नाला बर्फ़ की क़ैद से आज़ाद होकर पत्थरों में बहता है——कल्पना मात्र से, उस सर्दी के बावजूद उन्हें पसीना आ गया, कपड़ों के नीचे उन्होंने नमी-सी महसूस की और वे हसनदीन के सहारे दो-चार लम्बे पग धरते हुए बर्फ़ की उस पगडंडी के पार हो गये।

हसनदीन का ख़याल था कि वह उप्पल साहब की भतीजी

और जीवानन्द को भी पार आने में सहायता देगा, लेकिन खन्ना साहब को इस पार लाकर जब वह मुड़ा तो उसने देखा कि जीवानन्द ऊषा को सहारा देकर लगभग पार आ गया है।

पार आकर खन्ना साहब कुछ क्षण चुपचाप खड़े रहे, अफ़राबट एकदम ऊपर दिखायी देता था। सीधी चढ़ाई और उनकी साँस पगडंडी पार करते ही फूल गयी थी, लेकिन उनका लड़का चलने को उतावला था और अपनी माँ का हाथ खींच रहा था।

खन्ना साहब अपनी बीवी के पीछे चलने ही लगे थे कि हसनदीन ने कहा, "साब आप बैग ले लीजिए, हमारा तबीयत बहुत ख़राब है, हम नीचे दोनाला पर आपका इन्तज़ार करेगा।"

"अफ़राबट तक तो तुम्हें चलना ही पड़ेगा," खन्ना साहब झुँझलाकर बोले, "तुम्हारी ही वजह से हम आये हैं।"

"साब हमारा सिर दर्द करता है।"

"शकुन इसे थोड़ी-सी बाम दो।" उन्होंने अपनी पत्नी से कहा।

"अरे साब को ले जाता क्यों नहीं अफ़राबट तक। बड़ा सेठ है, ख़ूब बख़शीश देगा। . . . ."

खन्ना साहब की बीवी बैग से बाम की शीशी निकाल रही थी। आवाज़ सुनकर खन्ना साहब मुड़े। उन्होंने देखा कि वही बर्फ़-गाड़ी वाला कन्धे पर बर्फ़-गाड़ी उठाये इस पार आ गया है।

"बख़शीश का बात नहीं, हमारा सिर दर्द करता है।" हसनदीन ने बेबसी से कहा।

बर्फ़-गाड़ी वाले कश्मीरी ने गाड़ी धरती पर रखकर श्रीमती खन्ना से बाम ली और हसनदीन के माथे पर मल दी, फिर वह गाड़ी कन्धे पर रखकर हसनदीन को दायीं बग़ल में लेता और "कहकर लाये हो तो साब को अफ़राबट पहुँचा दो।" कश्मीरी भाषा में यह कहता हुआ आगे बढ़ा।

खन्ना साहब चल दिये। ऊषा और जीवानन्द कुछ आगे निकल गये थे और कुछ ऊँचाई पर जा रहे थे, खन्ना साहब का बच्चा उन्हें और आगे बढ़ने के लिए खींच रहा था और वे भरसक तेज़ चलने का प्रयास कर रहे थे।

हसनदीन और बर्फ़-गाड़ी वाला दोनों सब के पीछे चल रहे थे।

"यार हमारा तय करा दो, हम तुम्हें चाय पिलायेंगे।" बर्फ़-गाड़ी वाले ने अपनी भाषा में बड़े धीमे स्वर में हसनदीन से कहा।

"मेरा सिर फटा जाता है, तुम्हें अपनी पड़ी है।"

"दो गोली 'इस्प्रो' बढ़िया कहवे के साथ खाना, सिर-दर्द का पता न चलेगा।"

"हमारी किस्मत में तो वही अपनी नमकीन चाय है।"

"हम पिलायेंगे तुम्हें कहवा।" और उसने सीने पर ज़ोर से हाथ मारा।

पैदल आने वाली पार्टी बर्फ़ का पुल पार कर रही थी। हसनदीन ने एक नज़र उन लोगों पर डाली और आगे बढ़कर खन्ना साहब से कहा, "साब अफ़राबट तक पहुँचते-पहुँचते एक बज

जायगा, तुम खाना भी खायगा, तुमको टंगमर्ग से बस भी पकड़ना है, बर्फ़-गाड़ी तुमको पाँच मिनट में दोनाला पहुँचा देगा, पैदल तो एक घंटा लग जायगा।"

"लेकिन हम चार-पौने चार नहीं दे सकता।"

"तुम बोलो, तुम ज़्यादा-से-ज़्यादा कितना दे सकता है ?"

"हम दो-अढ़ाई रुपये से ज़्यादा हरगिज़ नहीं दे सकता।" मन में उन्होंने हिसाब लगाया कि यदि वे समय से बस पर न पहुँचे तो उनके आठ रुपये व्यर्थ जायँगे, क्योंकि वे वापसी टिकट खरीदकर गुलमर्ग आये थे, वही आठ वे बर्फ़-गाड़ियों पर ख़र्च कर देंगे। बच्चा भी ख़ुश हो जायगा, बर्फ़-गाड़ियों की सैर भी कर लेंगे (उनको स्वयं शौक था कि वे चढ़कर देखें कैसे इतनी ऊँचाई से आदमी सर्र से एकदम मीलों नीचे चला जाता है ?)

"इतने कम पर तो शायद तैयार न हों।" हसनदीन ने कहा।

"तुम कोशिश तो करो। उनको देने के बदले हम तुम्हें देंगे, देखो भाई अढ़ाई रुपये प्रति सवारी पर उन्हें मनाओ।"

लेकिन जब कुछ ही क्षण बाद हसनदीन ने आकर बताया कि उसने बड़ी मुश्किल से उन्हें राज़ी कर लिया है तो खन्ना साहब को बड़ा अफ़सोस हुआ। उन्हें लगा कि उन्हें दो रुपये प्रति सवारी कहना चाहिए था और बच्चे के तो आधे पैसे होने चाहिएँ थे। पलटकर उन्होंने हसनदीन से कहा—"बच्चे का हम सवा रुपया देंगे। उसका तो बस में भी आधा टिकेट लगता है।"

खन्ना साहब का बच्चा अपनी माँ को लेकर सबसे आगे निकल गया था। पीछे से आने वाले भी आगे निकल गये थे। चढ़ाई

ऐसी सीधी थी कि खन्ना साहब को हर मोड़ पर साँस लेनी पड़ती थी।

"साब हमारे पास तो दो बर्फ़-गाड़ी है, हम तीसरा आदमी को भेज देता है, तुम उससे तय कर लो।" स्लेज वालों ने कहा।

"नहीं हम तय-वय कुछ नहीं करेंगे, हम सवा रुपया बच्चे का देंगे, तीसरा आदमी तुम्हीं तैयार करो।"

और वे तेज़-तेज़ चलने लगे, पर दो मोड़ पार करते-करते ही उनकी साँस फूल गयी, लेकिन इस प्रयास में वे ऊषा और जीवानन्द से आगे निकल आये।

"पापो जी हमको छुओ। देखो हम कितना ऊपर चढ़ गये हैं।" कुक्कू ने एक मोड़ ऊपर से कहा।

"आपका बच्चा साहब बड़ा तेज़ है!" दोनाला से पैदल आने वाले एक बुज़ुर्ग ने कहा, "इतने में ही उसने हमें दोस्त बना लिया है। अपने कॉन्वेंट, साथियों और टीचरों के नाम—उसने सब बता दिये हैं।"

"साब, हम तो कॉन्वेंट के हक़ में नहीं, पर हमारे बड़े भाई के कोई लड़का नहीं, वे इसे ही अपना लड़का मानते हैं, सो यह कॉन्वेंट में पढ़ता है।" खन्ना साहब वहीं से बोले।

"नहीं साब, आप बहुत अच्छा करते हैं, आपके लड़के को देखकर तबीयत ख़ुश हो गयी।"

"हम तो इसके थक जाने के डर से इस ऊँचाई पर आ नहीं रहे थे, लेकिन यह तो भागा जा रहा है, हमीं थक गये हैं।"

चढ़ाई एकदम सीधी हो गयी थी, उन बुज़ुर्ग को कष्ट हो

रहा था। "अंकल जी, मैं आपकी मदद करता हूँ।" सहसा खन्ना साहब का बच्चा नीचे उतर आया और उनका हाथ थामकर उन्हें चढ़ने में मदद देने लगा। और देखते-देखते उन्हें छोटी और सीधी पगडंडियों के रास्ते सबसे आगे ले गया। बच्चे के साथ बुज़ुर्ग भी बच्चा बन गये।

खन्ना साहब थककर सुस्ताने के लिए एक पत्थर पर बैठ गये। वहीं बैठे-बैठे उन्होंने देखा कि दो-तीन मोड़ नीचे, ऊषा थककर एक चट्टान पर बैठ गयी है और जीवानन्द उससे सटा, अपनी दायीं बाँह से उसे घेरे, बातों में निमग्न है। उन्हें अलपत्थर पहुँचने की कोई जल्दी नहीं। जैसे वे अनन्तकाल तक वहीं बैठे रहेंगे।

खन्ना साहब को क्षण भर के लिए जीवानन्द से ईर्ष्या हुई, फिर उन्हें ख़याल आया, मुड़कर उसे इस बदतमीज़ी से रोकें—ऊषा के चचा ने उन्हें उसका ख़याल रखने और अफ़राबट दिखा लाने के लिए कहा था। लेकिन इससे पहले कि वे उठते, उन्होंने सोचा, जाने उप्पल साहब इस तरह उस लड़के को फाँस ही रहे हों, जभी तो उसे अकेले उसके साथ भेज दिया है, दिल्ली में उस मुटकी को ऐसा अच्छा अमीर युवा वर कहाँ मिलेगा और उनके कर्त्तव्य का जोश पानी की झाग-सा बैठ गया और एक लम्बी साँस उनके ओठों से निकल गयी—पहाड़ की सैर का मज़ा तो ये लोग ले रहे हैं, वे ख़ुद तो जैसे बेगार काट रहे हैं और उन्होंने मन-ही-मन फ़ैसला किया कि चाहे कुछ ज़्यादा पैसे ही देने पड़ें, वे अफ़राबट की चोटी से स्लेज द्वारा ज़रूर उतरेंगे। कुछ याद तो रहे कि हाँ पहाड़ की सैर को गये थे। और कल्पना-ही-कल्पना में वे

स्लेज-ड्राइवर के पीछे आँधी के वेग से बर्फ़ को चीरते अफ़राबट से उतरे. . . .

कि बर्फ़-गाड़ी वाला दायीं ओर बर्फ़ीले किनारे से एक बुड्ढे को साथ लेकर उनके सम्मुख आ खड़ा हुआ, हसनदीन को भी उसने साथ ले लिया। "साब यह तो अढ़ाई रुपये पर भी तैयार नहीं होता।"

और यद्यपि अभी मन-ही-मन खन्ना साहब ने कुछ ज़्यादा ख़र्च करके भी बर्फ़-गाड़ी की सैर करने का फ़ैसला किया था तो भी जब उन्होंने उत्तर दिया तो 'ठीक है, चलेंगे,' उनके ओठों से नहीं निकला। वे उठ खड़े हुए। "तो कोई बात नहीं, हम पैदल ही जायँगे, हमें जल्दी नहीं।" उन्होंने कहा और एक हाथ से अपनी दायीं रान पर ज़ोर देकर चढ़ाई चढ़ने लगे।

वे लोग खन्ना साहब के पीछे आते हुए कश्मीरी भाषा में तेज़-तेज़ बातें करने लगे। कुछ देर बाद पहले कश्मीरी ने आगे बढ़कर कहा, "साब, यह अढ़ाई रुपये तो ले लेगा, पर इससे कम नहीं लेगा।"

"हम सवा रुपये से कौड़ी ज़्यादा नहीं देंगे," खन्ना साहब ने बिना रुके कहा। लेकिन हसनदीन को आवाज़ देकर वे धीरे से बोले, "तुम ठीक समझो तो उन्हें डेढ़ रुपये पर राज़ी कर लो। इससे ज़्यादा हम नहीं देंगे।"

वे सब अफ़राबट पहुँच गये थे जब आख़िर तय हुआ कि वे लोग चाहे जैसे बाँटें, खन्ना साहब तीनों सवारियों के सात रुपये देंगे और कश्मीरी बर्फ़-गाड़ी वाले उनकी बात मान गये।

जैसे अफ़राबट के कंधे पर एक बड़ा छोटा-सा, किंचित ढालुवाँ घास का मैदान था। वहाँ चन्द ही क़दम के अंतर पर बर्फ़-ही-बर्फ़ फैली थी जो कुछ और ऊँचे पर, अफ़राबट की चोटी तक चली गयी थी। उस बर्फ़ के उधर क्या है, यह उस घास के मैदान से नज़र न आता था। जो लोग पहले आ गये थे, उनमें से कुछ थक-कर अध-बैठे, अध-लेटे हो गये थे और कुछ उस मैदान के किनारे जाकर नीचे फैली कश्मीर की वादी का नज़ारा कर रहे थे। खन्ना साहब का बच्चा उन बुज़ुर्ग से सामने के पहाड़ों और चोटियों के सम्बन्ध में प्रश्न कर रहा था। उनकी बीवी थककर लेट गयी थी। तभी उन्होंने देखा—अफ़राबट की चोटी के नीचे बर्फ़ के उस चौड़े पाट पर वही बर्फ़-गाड़ी वाला जल्दी-जल्दी पैर रखता हुआ, ऊपर को चढ़ा जा रहा है।

बर्फ़ की उस श्वेत विशालता में वह आगे को बढ़ता चींटा-सा उन्हें बड़ा भला लगा। हसनदीन बैग उनकी पत्नी को सौंपकर कम्बल बिछाकर लेटने का उपक्रम कर रहा था कि उन्होंने उठकर उससे पूछा—"वह कहाँ जा रहा है?"

"शायद मुंडी बूटी लेने।"

"मुंडी बूटी!"

"यहाँ उगता है, ख़ूब महँगा बिकता है।"

खन्ना साहब कुछ क्षण तक वहीं खड़े उसे देखते रहे, फिर वे पलटे। वहाँ गये, जहाँ उनका बच्चा और बुज़ुर्ग खड़े थे। सामने वही दृश्य था जो खिलनमर्ग से दिखायी देता था—हाँ कुछ और विशाल, कुछ और विराट हो गया था। सामने, जहाँ वुलर थी,

काफ़ी धुंध उठ रही थी और हरमुख और नाँगा पर्वत के हिम-शिखर, बादलों में छिप गये थे—'अप्रैल-मई में यहाँ का नज़ारा शानदार होगा।' उन्होंने सोचा। तब कोई कह रहा था—"बादल छँटने के बाद आकाश खुला हो और बढ़िया दूरबीन आँखों पर हो तो यहाँ से शालामार और निशात तक दिखायी दे जाते हैं।"

एक दूसरा व्यक्ति उस विलायती साहब से अँग्रेज़ी में पूछ रहा था, "क्यों साब आपका स्विटज़रलैण्ड कश्मीर से अच्छा है?"

"स्विटज़रलैण्ड छोटा है, कश्मीर की एक घाटी में समा जाय, लेकिन वह विकसित ज़्यादा है।" उन्होंने अँग्रेज़ी ही में उत्तर दिया। उनके उच्चारण में 'ट' के बदले 'त' और 'ड' के बदले 'द' था।

एक बजने को था जब लोग लंच पर बैठे। ऊपर आकाश पर, बड़े निकट ही, बादलों के टुकड़े उड़ रहे थे। अपने बच्चे की प्रगलभता और चाँचल्य के कारण खन्ना साहब ने उन बुज़ुर्ग और उनकी टोली से मैत्री कर ली। उन्होंने अपना एक-एक पराँठा सब को बाँट दिया और बदले में षड्-रस-स्वाद पाया। उन बुज़ुर्ग तथा उनके साथियों के पास तो लैमन स्कुआश की बोतल और थर्मास में पानी था, पर खन्ना साहब अपनी बीवी के साथ हसनदीन से पता लेकर वहाँ गये, जहाँ कश्मीरी स्लेज वाले खड़े थे। वहाँ किनारे पर, यद्यपि ऊपर-ऊपर बर्फ़ हल्की थी, लेकिन नीचे उसी तरह जमी थी, जैसे कारखानों में जमी होती है और उसी से पानी की पतली-सी धार टपक रही थी। वहीं से उन्होंने चार-चार घूँट पानी पिया।

प्यास तो नहीं मिटी, लेकिन पानी इतना ठंडा था कि पीना मुश्किल था।

उस टोली के एक-दो मनचलों के पास बढ़िया कैमरे थे, जब उन्होंने फ़ोटो लिये तो खन्ना साहब भी उनमें शामिल हो गये। वे लोग दिल्ली ही के थे। (खन्ना साहब ने अपना पता उन्हें लिखवा दिया और उनका लिख लिया कि यदि वे स्वयं उन्हें फ़ोटो का प्रिंट न भेजें तो वे ख़ुद जाकर ले लें। अपने कैमरे से फ़ोटो लेकर उन्होंने एक-दो फ़िल्में बर्बाद करना ठीक नहीं समझा।)

पौने दो बजने को होंगे जब कुछ लोगों ने अलपत्थर और फ़रोज़न लेक देखने का फ़ैसला किया। यद्यपि कुछ लोगों का ख़याल था कि वहीं से वापस चलना चाहिए, लेकिन उस टोली में एक अमृतसर का युवक लाला भी था, उसने कहा कि जब पैसे ख़र्च किये हैं तो उनका पूरा लाभ उठाना चाहिए और खन्ना साहब को उसकी बात पसन्द आयी। उनके अपने मन में भी यही बात थी। इतना पैसा ख़र्च करके और इतना शारीरिक कष्ट सहकर क्या वे इस छोटे-से घास के टुकड़े पर बैठने को आये थे। घाटी का दृश्य तो खिलनमर्ग से भी दिखायी देता था। उनके बच्चे ने जब सुना कि लोग फ़रोज़न लेक चलने की सोच रहे हैं तो वह ख़ुशी से उछलने लगा, 'पापो जी हम ज़रूर फ़रोज़न लेक देखेंगे,' 'पापो जी हम ज़रूर फ़रोज़न लेक देखेंगे।' उसने रट लगायी और अपने नये बने अंकल का हाथ खींचने लगा कि अंकल तुम भी

चलो। और हालाँकि उन्होंने वहीं अपने साथियों की वापसी का इन्तज़ार करने की सोची थी, पर उस छोटे-से बच्चे को तैयार होते देखकर वे भी तैयार हो गये।

खन्ना साहब की बीवी ने बैग ठीक किया और खन्ना साहब ने हसनदीन को जा झकझोरा।

हसनदीन ने कम्बल हटाया। उसका सिर फटा जा रहा था, नाक बह रही थी और शायद उसे हरारत भी थी। आँखें मलते हुए उसने आसमान की ओर देखा और बोला——

"साब टाइम बहुत हो गया है। तुमको बस पकड़ना है। तुमको अब चलना चाहिए।"

"नहीं, नहीं, अब इतनी दूर आये हैं तो अलपत्थर और फ़रोज़न लेक देखे बिना वापस न जायँगे। जाते में तो बर्फ़-गाड़ियों से जायँगे।

"साब तुम देख आओ। हम नीचे दोनाले पर तुम्हारा इन्तज़ार करेगा।"

गाइड किसी भी आदमी के साथ न था। साथ की टोली में से एक आदमी कभी बहुत पहले लड़कपन में आया था, लेकिन ऐसी अकेली जगह खन्ना साहब किसी तरह का संकट मोल लेने को तैयार न थे।

"नहीं, नहीं, तुम चलो। इतनी दूर आकर तुम हमें नहीं छोड़ सकते।" उन्होंने कहा, फिर मिन्नत के स्वर में बोले, "यक़ीन करो, हम तुम्हें ख़ुश कर देंगे। यक़ीन नहीं आता तो पहले रुपये ले लो।" और उन्होंने जेब में हाथ डाला।

"नहीं साब, उसका बात नहीं। हमारा सिर दर्द करता है। हमको सर्दी लग गया है। बुख़ार लगता है।"

खन्ना साहब का बच्चा भाग आया और उसने हसनदीन का हाथ पकड़कर खींचा, "चलो हमको बर्फ़ पार कराओ।"

हसनदीन ने क्षण भर उस चंचल बच्चे को देखा। फिर बेबसी से बोला, "बच्चा हमारा तबीयत ख़राब है। तुम अपने पापा-ममी के साथ जाओ।"

बच्चे ने ओठ तरेर लिये। हसनदीन के मन को कुछ होने-सा लगा। अपना सिर का दर्द और बुख़ार उसे भूल-सा गया।

तभी खन्ना साहब की पत्नी ने बैग से बाम निकाली और इस बार उसे स्वयं हसनदीन के माथे, कनपटियों और नाक की ठोड़ी के दोनों ओर मल दिया।

हसनदीन फिर चल पड़ा।

वे लोग जहाँ खाना खाने बैठे थे वहाँ से कुछ ही क़दम ऊपर को बढ़े तो उन्हें सामने बर्फ़ फैली दिखायी दी। उसे पार कर वे ऐसी जगह पहुँचे जहाँ बर्फ़ कुछ ढल गयी थी। लेकिन वहाँ से चोटी के दूसरी ओर का दृश्य दिखायी न देता था। हसनदीन के पीछे-पीछे वे बायीं ओर को मुड़े तो फिर दूर तक बर्फ़ फैली दिखायी दी। वास्तव में यह उसी बर्फ़ का ऊपरी भाग था जो नीचे दोनाले तक फैली चली गयी थी। चूँकि ढलान यहाँ नहीं थी, और उनके बच्चे को बर्फ़ पर चलना आ गया था, इसलिए वह इस बर्फ़ पर भी

अपने-आप चन्द क़दम बढ़ गया। लेकिन खन्ना साहब ने उसे डाँट दिया कि वह हसनदीन के साथ जाय।

हसनदीन ने फिर एक बार कहा, "साब बादल घिर रहा है, बरसेगा, तुमको वापस जाना चाहिए।"

लेकिन वहाँ पहुँचकर, उस पार का नज़ारा न करना, अल-पत्थर और उसकी जमी हुई झील को न देखना, उन्हें अपने पैसे के पूरे दाम न वसूल करना लगा। फिर यदि उनका बच्चा या बीवी आपत्ति करते, थके दिखायी देते तो शायद वे लौट पड़ते। लेकिन बच्चा उनका शोख़ और चंचल था। फिसलने अथवा गिरने की परवाह किये बिना, हसनदीन के साथ वह पिछली बर्फ़ पर भागता चला आया था और अब बर्फ़ की यह नदी पार करने को मुस्तैद था।

"साब नीचे जाने का वक्त नहीं रहेगा।" हसनदीन ने रुककर फिर एक बार कहा।

खन्ना साहब ने घड़ी पर नज़र डाली और हसनदीन का हाथ खींचते हुए, बर्फ़ पर क़दम रखे, अपने बच्चे की ओर देखा! उसे देखते हुए माँ की आँखों में जो चमक थी, उसे लक्ष्य किया और बोले, "हम स्लेजों में वापस जा रहे है, तुम जल्दी करो, हमारे पास एक घंटा है। इतनी दूर आकर अब फ़रोज़न लेक देखे बिना वापस न लौटेंगे।"

हसनदीन बच्चे को लिये हुए बढ़ा। खन्ना साहब कन्धे पर कैमरा और बरसाती सम्हालते हुए अपनी पत्नी को लेकर उनके पद-चिन्हों में पैर रखते हुए एक दूसरे को

सहारा देते हुए बढ़े। उनकी पत्नी छाते से छड़ी का काम लेती रही।

वे अभी आधे रास्ते में होंगे कि हसनदीन बच्चे को छोड़कर आ गया और दोनों को सहारा देता तेज़-तेज़ ले चला। पिछली टोली के आदमी गिरते-पड़ते पीछे आ रहे थे।

ठीक उस बर्फ़ की नदी के पार अफ़राबट की चोटी थी, जहाँ से दूसरी ओर का दृश्य दिखायी देता था। खन्ना साहब वहीं मन्त्र-मुग्ध से खड़े रहे। दृश्य वर्णनातीत रूप से सुन्दर था। इस चोटी से सामने के शिखर तक दायें-बायें, आमने-सामने—सारी जगह बर्फ़ से ढकी थी और एक ओर से ऊँचा और मुँह की ओर को झुका विशाल बीकर* सा बन गया था। कहीं भी तो चट्टान या पत्थर दिखायी न देता था। दायीं ओर, जहाँ बर्फ़ ढालुवा होती हुई अफ़राबट के पीछे-पीछे नीचे तक चली गयी थी, दूर सब्ज़ी-मायल झलक लिये हुए नीला जल झाग उड़ाता बह रहा था। उसके परे कहीं नीचे देवदार का जंगल था। वहीं जंगल के ऊपर आकाश का रंग गहरा नीला हो रहा था और रह-रहकर बिजली चमक उठती थी।—

लेकिन हसनदीन को यह सब सौन्दर्य दिखायी न दे रहा था। उसका सिर फटा जा रहा था और वह चाहता था कि वे लोग यह सब देख-दिखाकर नीचे को चलें और वह अपने घर पहुँचकर लिहाफ़ ओढ़ ले और एकदम सो जाय।

---

*Beaker **चोंच वाला प्याला**

"साब पानी आ रहा है, शायद पत्थर पड़ें।" उसने जैसे अपने स्वर से ही उन्हें आगे ठेलते हुए कहा और कम्बल को सिर से लपेटते हुए ज़ोर से बर्फ़ पर नाक साफ़ की।

"पानी तो अब आयगा ही, चाहे हम आगे जायँ या पीछे मुड़ें।" खन्ना साहब बोले, "इसलिए हम मुड़ेंगे नहीं।" और बरसाती पहनते हुए उन्होंने नीचे घाटी से नज़र हटाकर सामने के पहाड़ के पीछे से सिर उठाती हुई कांतारनाग की हिम-मंडित चोटी की ओर देखा। नीले-नीले आकाश की पृष्ठभूमि में वह बड़ी सुन्दर और भव्य लग रही थी।

लेकिन उनके पास इत्मीनान से यह सब सौन्दर्य देखने का समय नहीं था। उन्होंने हसनदीन से पूछा, "क्यों भई अलपत्थर कहाँ है?"

हसनदीन ने हाथ से सामने इशारा किया, "बस यह सामने अलपत्थर है।"

खन्ना साहब ने देखा—अफ़रावट के बायीं ओर बर्फ़-ही-बर्फ़ थी, जिसे नीचे से पार करके वे आये थे, लेकिन दायीं ओर शायद वह पिघल गयी थी और बहुत बड़े-बड़े लाल पत्थर बिखरे थे।

"फ़रोजन लेक यहाँ से कितनी दूर है?"

"मील भर होगी साब।"

"नज़र कहाँ से आयेगी।"

"अलपत्थर के परे जहाँ यह चोटी ख़त्म होती है, वहाँ से।"

"तो चलो।"

और वे छड़ी की मदद से उधर को बढ़े। दो जगह उन्हें फिर

बर्फ़ पार करनी पड़ी। वे दूसरी बार बर्फ़ पार कर छड़ी की मदद से बड़े-बड़े पत्थरों पर लगभग भागते जा रहे थे कि तूफ़ान ने उन्हें आ लिया और सूखे अम्बर ओले गिरने लगे। दूसरे लोग न जाने कहाँ पीछे रह गये थे।

पत्नी ने ओवरकोट पहन रखा था, उसने छाता तान लिया। बच्चे ने नोकदार टोपी वाली बरसाती पहन ली। लेकिन वे बहुत बढ़ नहीं पाये। क्योंकि ओले तड़ातड़ गिरने लगे और आकाश पर रह-रहकर बादल गरजने लगे।

खन्ना साहब पर जैसे जुनून सवार हो गया। पत्थरों पर छड़ी टिकाते हुए वे लगभग भागते गये कि ओले और भी ज़ोर से गिरने लगे। हसनदीन ने निकट आकर कहा, "हुज़ूर अब चलिए, यह सामने फ़रोज़न लेक है।"

खन्ना साहब ने देखा—सामने के पहाड़ पर बर्फ़ कुछ ऐसे जमी थी कि गोल दायरा-सा बन गया था। लेकिन ध्यान से देखने पर उन्हें उस आँचल में दो-तीन जगह वैसे ही गोल घेरे दिखायी दिये। तीनों ओर हिमाच्छादित पहाड़ थे, जिससे बीच में बर्फ़ का प्याला-सा बना था। इसी प्याले में छोटे-छोटे दायरे दिखायी देते, जिससे लगता था कि यहाँ पानी जमा होगा। खन्ना साहब रुके नहीं, अपने बीवी-बच्चे को वहाँ रुकने के लिए कहकर वे आगे बढ़े।

बादल शायद नीचे खिलनमर्ग की ओर उड़ गये थे। पत्थरों पर फलाँगते, दरारों से बचते, खन्ना साहब अलपत्थर के किनारे की ओर बढ़ते गये। आख़िर वे उस चोटी के किनारे पर पहुँच गये।

सामने दूसरी चोटी तक सब जगह बर्फ़ जमी थी और अलपत्थर के काफ़ी नीचे एक जगह,वैरी नाग के चश्मे जैसे सब्ज़ी मायल नीले, ज़हरमोहरा रंग के पानी की एक लकीर-सी दिखायी दे रही थी।

तब तक हसनदीन भी आ मिला, "साब यह एक महीने तक पिघल जायगा। अगस्त में तुम इधर आयगा तो यहाँ लेक मिलेगा। अभी यह फ़रोज़न है, जमा है। बस अभी तो यहाँ ज़रा-सा पानी है।"

खन्ना साहब सहसा पीछे मुड़े, अपनी बीवी और बच्चे को उन्होंने आवाज़ दी। फिर उन्होंने हसनदीन को आदेश दिया कि उन्हें जाकर ले आये।

हसनदीन ने नाक साफ़ की, कम्बल को सिर के गिर्द लपेटा और जाकर उनको ले आया।

केवल एक दृष्टि उस पानी पर डालकर वे सब मुड़े। खन्ना साहब तेज़ी में सबसे आगे चल रहे थे।

रास्ते में उन्हें वही बुज़ुर्ग और टोली के दूसरे आदमी मिले। बिना रुके, चलते-चलते खन्ना साहब ने उनका पथ-निर्देश किया और यह कहते हुए कि उन्हें बस पकड़नी है, भागे। आते समय हसनदीन उन्हें शार्टकट से लाया। उन्हें बर्फ़ का वह दरिया पार नहीं करना पड़ा। बर्फ़-गाड़ी वाले अफ़राबट की उस बर्फ़नी नदी के इस किनारे आ गये थे। हसनदीन उन्हें शार्टकट से इसी किनारे ले आया।

आकाश खुल गया था। सहसा खन्ना साहब को ख़याल आया क्यों न अफ़राबट की चोटी पर फैली इस बर्फ़ पर अपने बीवी-बच्चे का फ़ोटो लें और उन्होंने बैग माँगा, कैमरे का स्टैण्ड निकाल,

उसे बर्फ़ में गाड़ा और कैमरा फ़िट करके जल्दी-जल्दी दो फ़ोटो लिये। वे कैमरा बन्द कर रहे थे कि उनका बच्चा बर्फ़-गाड़ियों पर चढ़ने की ख़ुशी में उधर को भागा और पत्थर पर फिसल गया। खन्ना साहब कैमरा वहीं छोड़कर भागे। हसनदीन से उन्होंने मेम साहब को लेकर आने के लिए कहा और स्वयं बच्चे को उठाकर बर्फ़-गाड़ियों की ओर बढ़े।

बर्फ़-गाड़ियाँ छोटी-छोटी थीं—बे-पहिये की—और लगाम की जगह उनमें रस्सी लगी थी। ड्राइवर आगे बैठे थे। एक-एक आदमी को अपने पीछे बैठने के लिए उन्होंने कहा। बच्चा सबसे अगली गाड़ी में बैठना चाहता था सो खन्ना साहब ने उसे सबसे अगली गाड़ी पर बैठा दिया।

"मेरी कमर में बाँहें डालकर उसे कसके पकड़ लो और जैसे मैं दोनों पैर फैला दूँ ऐसे फैला लो—देखो कमर मत छोड़ना!" ड्राइवर ने कहा।

खन्ना साहब ने यही आदेश दोहरा दिया। बच्चा उसी तरह बैठ गया। और बर्फ़-गाड़ी बह चली।

बच्चे के बाद खन्ना साहब की पत्नी बैठी।

सबसे अन्तिम गाड़ी पर वे स्वयं बैठे।

चलने से पहले उन्होंने एक बार पीछे मुड़कर देखा। हसनदीन ने बरसाती नीचे बिछा ली थी, दोनों पाँव फैलाकर बर्फ़ में गाड़ लिये थे और छड़ी को बर्फ़ में गाड़कर स्टीरिंग के लिए दोनों हाथों

में ले लिया था और वह खन्ना साहब के पीछे उतरने को बिलकुल तैयार था।......

उसके परे खन्ना साहब की नज़र अलपत्थर की ओर चोटी पर गयी। बर्फ़ के ऊपर ऊषा और जीवानन्द खड़े थे। पीछे केवल नीला आकाश था। दोनों के बाल उड़ रहे थे और दोनों के हाथ एक दूसरे की कमर में थे।

खन्ना साहब और कुछ नहीं देख सके, क्योंकि स्लेज चल पड़ी थी। केवल हसनदीन ने एक क्षण ऊषा और जीवानन्द को देखा और एक क्षण खन्ना साहब को और सिर को ज़रा-सा झटका देकर वह भी नीचे को फिसल चला।

बर्फ़-गाड़ियाँ बिजली की गति से बर्फ़ की ढलान पर उड़ी जा रही थीं। स्लेज वाले बड़े कुशल चालक थे। पाँव बर्फ़ पर धँसाते, दोनों हाथों से स्लेजों की रस्सियाँ पकड़े, उड़े जा रहे थे। उनके फैले हुए पैरों की एड़ियों से बर्फ़ पर दो गहरी लकीरें बनती चली जा रही थीं। अचानक खन्ना साहब को ख़याल आया—काश कैमरे में इस दृश्य को उतारा जा सकता! और कैमरे का ख़याल आते ही उन्होंने दृश्य से आँखें हटाकर कमर में सदा लटकने वाले कैमरे पर निगाह डाली। दिल धक्क से रह गया। कैमरा नहीं था। तभी उन्हें याद आया कि कैमरा तो उन्होंने हसनदीन से सम्हालने को कहा था। तब चिल्लाकर उन्होंने अपने पीछे आते हसनदीन से पूछा—

"हसनदीन कैमरा और स्टैण्ड तो सम्हाल लिया है न?"

हसनदीन ने देखा—कैमरा कन्धे से लटक रहा है, पर फ़िरन की जेबें देखीं तो स्टैण्ड नदारद!

"साब स्टैण्ड तो शायद जल्दी में ऊपर रह गया।" वह चिल्लाया।

खन्ना साहब ने गाड़ी वाले को गाड़ी रोकने के लिए कहा। कुछ आगे जाकर गाड़ी रुक गयी।

हसनदीन खन्ना साहब के बराबर आ गया, उसने कैमरा उनके गले में डाल दिया।

"साब स्टैण्ड शायद ऊपर चोटी पर रह गया। हम अभी उसे लाता है। तुम चलो। हम शार्टकट से आता है।"

ओर नीचे से बरसाती निकालकर उसे कन्धे पर डालते हुए एड़ियों को बर्फ़ में गाड़ता हुआ वह बर्फ़ पर सीधा चोटी की ओर चल दिया।

खन्ना साहब का बच्चा और बीवी दूर निकल गये थे। "भई हमें बस पकड़नी है, बस अब गाड़ी को उड़ा ले चलो।" उन्होंने स्लेज वाले से कहा।

"साब मेरी कमर को कसकर पकड़िए और पैर उठाकर पीछे से मेरी गोद में रख लीजिए।" और उसने उनके दोनों पैर उठाकर अपनी गोद में रख लिये और स्लेज हवा से बातें करती दोनाले की ओर लपकी।

हसनदीन धीरे-धीरे ऊपर चढ़ा जा रहा था। उसके पाँव मन-मन भर के हो रहे थे, सिर फटा जा रहा था, आँखों के आगे झिल-मिला-सा छा रहा था और वह कभी फ़िरन की आस्तीन से, कभी कम्बल के कोने से अपनी नाक पोंछता था और बार-बार अपने फ़िरन की जेबें टटोलता था। लेकिन स्टैण्ड कोई सुई-सिलाई तो थी नहीं कि जेबों में गुम हो जाती। स्टैण्ड या तो ऊपर रह गया था, या तेज़ी से उतरते वक्त गिर गया था।

उसे इतना याद था कि अलपत्थर से लौटते समय वह खन्ना साहब को शार्टकट से लाया था, जहाँ स्लेज वाले अपनी छोटी-छोटी स्लेजें लिये खड़े थे। वहाँ—उस बर्फ़ानी देव के सीने पर, जिसके पैर खिलनमर्ग तक फैले हुए थे, खन्ना साहब रुके थे और उन्होंने हसनदीन से कैमरा माँगा था और फ़ोटो लिये थे। वे कैमरा बन्द कर रहे थे कि इस बीच उनका लड़का बर्फ़-गाड़ियों की ओर भागा और पत्थर पर फिसल गया। खन्ना साहब ने कैमरा वहीं छोड़कर उसे भागकर उठाया था। हसनदीन भी भागा था, लेकिन उससे उन्होंने कहा कि वह कैमरा वग़ैरा सम्हालकर मेम साहब को जल्दी लेकर आये, उन्हें ज़रा भी देर न करनी चाहिए .....वह वापस आया था तो मेम साहब ने कैमरा और स्टैण्ड बन्द कर उसे दिया था। खन्ना साहब नीचे से जल्दी मचा रहे थे और वह बैग उठाये उनकी बीवी को सहारा देता चला आया था।......

हसनदीन को यह सब अच्छी तरह याद था। इसके बाद उसे कुछ भी याद न आ रहा था। कैमरा तो उसे ही दिया गया

था, क्योंकि जब खन्ना साहब ने पूछा तो उसकी गर्दन में लटक रहा था, लेकिन स्टैण्ड ?—शायद स्टैण्ड उसने बर्फ़-गाड़ी वाले की पीठ से बैग बाँधते वक्त उसमें रख दिया था।

यह ख़याल आते ही वह मुड़ा। उसने देखा—खन्ना साहब नीचे दोनाले पर पहुँच गये हैं। दो घोड़े तैयार खड़े हैं। ममदू का घोड़ा हाथ नहीं आ रहा। पानी और ओले पड़ने के कारण उन्होंने शायद काठियाँ उतार ली थीं और घोड़ों को चरने के लिए छोड़ दिया था और वह पकड़ा न जा रहा था, या रस्सी तुड़ाकर भाग गया था। खन्ना साहब हाथ-पाँव चलाते हुए उस ऊँचाई से चींटे-सरीखे लग रहे थे। हसनदीन क़यास ही से उन्हें पहचान रहा था। हो सकता है घोड़ा ईदू का ही हो। उस साले का काम में मन नहीं लगता, ज़रूर उसी ने बेपरवाही से घोड़ा भगा दिया है। उसने भारी-सी गाली मन-ही-मन अपने बेटे को दी।

उसके जी में आया उड़कर नीचे पहुँच जाय और एक बार बैग खोलकर देख ले, लेकिन एक तो घोड़ा पकड़ में आ गया और उसके देखते-देखते उस पर काठी कसी गयी और वे सवार हो गये, दूसरे उसने सोचा—यदि स्टैण्ड बैग में न हुआ तो . . . . उसे एक बार ऊपर उस जगह पर देख ही लेना चाहिए, जहाँ फ़ोटो लिये गये थे। और वह तेज़-तेज़ चलने लगा। रास्ते में आँखें फाड़-फाड़कर वह देखता जाता था, आस्तीन से आँखों का पानी और बहती नाक पोंछता जाता था।

लेकिन बर्फ़ का वह पूरा मैदान देखने पर भी, उसे स्टैण्ड कहीं दिखायी न दिया। स्टैण्ड जहाँ गड़ा था, वहाँ बर्फ़ में तीन गड्ढे

अभी तक बने हुए थे, लेकिन स्टैण्ड कहीं न था। हसनदीन ने चोटी पर खड़े होकर बर्फ़ की उस ढाल पर निगाह डाली। उस सफ़ेदी में कहीं एक काला धब्बा भी न था—क्षण भर को उसकी निगाह और नीचे गयी। खिलनमर्ग और उससे परे गुलमर्ग के मैदान पर ओले बिछे हुए थे जो घास पर छाये थे, लेकिन हरी-हरी धुली-निखरी फुनगियाँ उनमें से निकली हुई थीं। बादल सामने के क्षितिज में जाकर इकट्ठे हो गये थे। वुलर पर कदाचित् वर्षा हो रही थी। उस गहरे नीले आकाश की पृष्ठभूमि में हरी-हरी घास में बिछी ओलों की चादरें अथवा उन चादरों में झलकती घास की हरियाली बड़ी भली लग रही थी। लेकिन हसनदीन की परेशान आँखें वहाँ कैमरे का स्टैण्ड ढूँढ़ रही थीं। दूधिया हरियाली के उस सौन्दर्य पर उसकी निगाह नहीं गयी—कैमरे का स्टैण्ड ढूँढ़ती हुई उसकी दृष्टि उसी बर्फ़ानी ढाल पर वापस लौट आयी—

उसने फिर चारों ओर एक बेबसी की निगाह डाली। फिर बरसाती नीचे बिछायी, हताश-सा उस पर बैठ गया, छड़ी उसने बर्फ़ में गाड़ी, पाँव फैलाये और तेज़ी से नीचे को फिसल चला।

बस के समय के पहले टंगमर्ग पहुँच जाय, बस एक ही चिन्ता उसे लगी थी।

अफ़राबट से अंधाधुंध उतरते वक्त न जाने बर्फ़ में छिपे किसी पत्थर की नोक से या न जाने किस चीज़ से उसकी एड़ी कट गयी। बर्फ़ में उसे पता नहीं चला, पर जब वह दोनाले से भागता हुआ

खिलनमर्ग की ओर चला तो उसकी एड़ी में ज़ोर से टीसें उठने लगीं। उनकी परवाह न करता हुआ लँगड़ाता लँगड़ाता, वर्षा के कारण कीचड़ हो जाने से गिरता, फिसलता, लेकिन लगातार भागता हुआ वह दोनाले से खिलनमर्ग और खिलन से गुलमर्ग पहुँचा. . . .अगर स्टैण्ड न मिला तो साहब उसे एक पैसा भी न देगा और तीनों की दो दिन की मेहनत बेकार हो जायगी, लेकिन यदि बस न निकली हो तो वह साहब के पाँव पकड़कर कुछ-न-कुछ ले ही मरेगा. . . .उनके लिए न सही, घोड़ों के लिए चारे और दाने भर का तो हो जायगा. . . .लेकिन यदि बस निकल गयी तो. . . .और विचार मात्र से उसका सिर घूमने लगता. . . .और वह 'बापम रिशी' और ख़ुदा दोनों से मनाता कि न केवल बस न निकली हो, बल्कि कैमरे का स्टैण्ड भी मिल गया हो।. . . .कभी वह अपनी मूर्खता पर क्रोध करता कि उसने क्यों पिछले दिन का हिसाब उसी दिन न कर लिया। सवारी पैसे-पैसे पर जान देने वाली है। ऐसी सवारी के पास पैसे कहीं छोड़े जाते हैं! कभी अपनी मूर्खता को, कभी अपनी किस्मत को, कभी खन्ना साहब की जल्दी को कोसता, लँगड़ाता-लँगड़ाता वह गुलमर्ग होटल पहुँचा और उसने बैरे से पूछा कि साहब को गये कितनी देर हुई है।

"वे लोग टंगमर्ग पहुंच गये होंगे," बैरे ने बताया, "तुमने उनका कैमरे का स्टैण्ड गुम कर दिया, फिर बरसाती और छड़ी भी उनकी तुम्हारे पास है। वे बड़े परेशान थे। तुम कोई घोड़ा लेकर जल्दी पहुँचो। बस में अभी टाइम है।"

वह होटल से बाहर निकला तो उसे खन्ना साहब का सन्देश

भी मिला। एक घोड़े वाला सवारी को टंगमर्ग पहुँचाकर नीचे से आ रहा था। उसने हसनदीन को देखते ही कहा, "तुम्हारा साब नीचे जाता हुआ मिला था। बड़ा घबराया हुआ था। तुम जल्दी पहुँचो।"

"मेरा पाँव कट गया है।"

"मेरा घोड़ा ले लो और भाग जाओ। एक रुपया दे देना।"

और कोई समय होता तो हसनदीन कभी यह स्वीकार न करता, लेकिन उस वक्त बढ़कर उसने घोड़े की लगाम थाम ली। घुड़सवार उतर आया। दूसरे क्षण हसनदीन घोड़े पर था और घोड़ा हवा से बातें कर रहा था।

टंगमर्ग के रास्ते पर लगाम घुमाने और घोड़े को एड़ लगाने के सिवा उसे किसी बात का ध्यान नहीं रहा। सौभाग्य से पानी इधर नहीं पड़ा था और घोड़े को भागने में ज़रा भी कठिनाई न हो रही थी। हसनदीन ने इसे शुभलक्षण समझा और उसने पीर को दुआ दी और उसे विश्वास हो गया कि न केवल बस खड़ी होगी, बल्कि कैमरे का स्टैण्ड भी बैग से मिल गया होगा।

दूर ही से जब उसे सरकारी बस खड़ी दिखायी दी तो उसने जोश से 'यौ पीर' का नारा मारा और घोड़े को एड़ लगायी। मिनटों में वह अड्डे पर पहुँच गया।

ईदू और ममदा सरदार हरनामसिंह के पास सहमे-से खड़े थे।

"घोड़ा ले ईदू।" अपने बेटे को आदेश देता हुआ, घोड़े से उतर, वह बस की ओर भागा।

लेकिन वह बस तक नहीं पहुँच पाया। रास्ते ही में सरदार हरनामसिंह ने उसे जा लिया और तड़ एक थप्पड़ और तड़ दूसरा थप्पड़......

"ओ उल्लू के पट्ठे, ओ खर के पिसर! कैमरे का स्टैण्ड कहाँ दबाया? बरसाती और छड़ी कहाँ है?"

"यह रही सरदार जी!"

और हरनामसिंह ने उससे दोनों चीज़ें लेकर साथी सिपाही को दीं कि साहब को पहुँचाये।

"लेकिन कैमरे का स्टैण्ड कहाँ है?" उन्होंने फिर उसकी ओर मुड़कर उसके एक थप्पड़ जमाया।

"सरदार जी...."

"मिला क्या? कहाँ है? चालीस रुपयों का स्टैण्ड है। साले पैसेंजरों को परेशान करते हो।"

और सरदार जी ने दो थप्पड़ और जमा दिये।

"जी......जी......"

"जी जी के बच्चे, कहाँ है स्टैण्ड?" और तड़ थप्पड़ और धड़ घूँसा।

हसनदीन धरती पर गिर गया। और उसने महसूस किया, सरदार हरनामसिंह के घूँसों और गालियों के साथ रैना और करीम खां की ठोकरें और गालियाँ भी मिल गयी हैं।

"ले जाओ इसे हवालात में! मैं ज़रा पैसेंजर से रिपोर्ट पर दस्तख़त कराऊँ।"

बस वापस चलने को घरघरा रही थी। खन्ना साहब दरवाज़े

में खड़े हसनदीन को पिटते देख रहे थे। अचानक उन्होंने ड्राइवर से कहा, "एक मिनट रोको।" और वे उतरे।

लेकिन सरदार हरनामसिंह उन्हीं की ओर आ रहे थे।

"सरदार जी मारो नहीं, कहीं गिर गया होगा," उन्होंने कहा और जेब से अट्ठाइस नहीं, तीस नहीं—केवल पन्द्रह रुपये निकालकर सरदार हरनामसिंह के हाथ पर रख दिये, "उन्हें दे दीजिएगा, पाँच-पाँच बाँट लेंगे," और वे मुड़े। फिर रुककर उन्होंने दो रुपये के नोट और निकाले—"ये हसनदीन को दे दीजिएगा। उसकी बख़शीश रही।"

और यों हातिमताई की कब्र पर लात मारकर वे भागते हुए घरघराती बस में जा चढ़े।

सरदार हरनामसिंह पैसे हाथ में लिये क्षण भर स्तम्भित-से खड़े रहे, फिर ऊँचे स्वर में बड़बड़ाये, "स्टैण्ड उन्हें कहीं ज़रूर मिल गया है, नहीं इतनी देर से शोर मचा रहे थे।"

"जी स्टैण्ड उनके बैग में था। मेम साब ढूँढ़ रही थीं तो मैंने ख़ुद देखा था। पर उन्होंने वहीं दबा दिया...." एक साईस बच्चे ने कहा।

लेकिन सरदार हरनामसिंह ने उसे बात नहीं ख़त्म करने दी। ज़ोर का एक चाँटा उसके मुँह पर मारा। "भाग जा यहाँ से, नहीं तू भी उसके साथ जेल में पहुँच जायगा।"

साईस-बच्चा हवा हो गया।

साँझ के साये गहरे होकर टंगमर्ग पर छा गये थे। हवालात में कम्बल बिछाये हसनदीन ख़ुदा के हुज़ूर में झुका हुआ था। ख़ुदा ने तो उसे समय से चेता दिया था, यह उसकी मूढ़ता थी कि उसने उस चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया। सजदा करके उसने ख़ुदा से अपने सब गुनाहों की माफ़ी माँगी और दुआ की कि उसे इस मुसीबत से नजात दिलाये।

और थाने के एक कमरे में सरदार हरनामसिंह और करीम खां और रैना बैठे थे। सत्रह में से आठ रुपये उन्होंने ऊपर के अफ़सरों को भिजवा दिये थे और शेष नौ आपस में बाँट लिये थे। उस समय वे हसनदीन की बीवी को समझा रहे थे कि वह कहीं से पचास रुपये पैदा करे तो हसनदीन छूट सकता है, क्योंकि सरकार पैसेंजरों को तकलीफ़ देगी तो पैसेंजर आयेंगे नहीं और घाटी के लोग भूखों मरेंगे। स्टैण्ड तो उन्हें ख़रीदकर देना ही पड़ेगा।

———